एम.ए.एच.आई. -02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. -02 - विश्व इतिहास
(राष्ट्रवाद,पूँजीवाद एवं समाजवाद) - 1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

खण्ड-1

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 मैटरनिक व्यवस्था तथा कांग्रेस की कूटनीति	5–18
इकाई 2 यूरोप में 1830-70 ई. के मध्य कृषि विस्तार	19–30
इकाई 3 पूर्वी समस्या एवं क्रीमिया का युद्ध	31–49
इकाई 4 इटली का एकीकरण	50–78
इकाई 5 जर्मनी का एकीकरण	79–100

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली	**प्रो. बी.आर. ग्रोवर** पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
प्रो. एस.पी. गुप्ता इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)	**प्रो. जे.पी. मिश्रा** पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
प्रो. के.एस. गुप्ता इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)	**डा. बृजकिशोर शर्मा** विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
डा. कमलेश शर्मा इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**डा. याक़ूब अली खान** इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. गोपीनाथ शर्मा पूर्व प्रोफेसर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)	**डा. एस.के. भनोत** राजकीय डूंगर महाविद्यालय बीकानेर (राज.)
डा. बी.एल. भादानी रीडर, इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)	**श्री हुकुम चन्द जैन** राजकीय महाविद्यालय कोटा

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. (श्रीमती) कमलेश वर्मा,

इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा** निदेशक(**अकादमिक**) **संकाय विभाग**	**योगेन्द्र गोयल** प्रभारी अधिकारी **पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - मार्च 2011 MAHI-02/ISBN No.-13/978-81-8496-261-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई-1
मैटरनिक व्यवस्था तथा कांग्रेस की कूटनीति

इकाई संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया
1.2 मैटरनिक की शासक नीति
1.3 मैटरनिक की गृहनीति
1.4 मैटरनिक की विदेश नीति
1.5 मैटरनिक और वियना सम्मेलन
1.6 वियना सम्मेलन का मूल्यांकन
1.7 संयुक्त व्यवस्था
1.8 मैटरनिक का पतन
1.9 मैटरनिक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन
1.10 बोध प्रश्न
1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया की स्थिति
2. मैटरनिक की गृहनीति व विदेश नीति
3. वियना सम्मेलन
4. संयुक्त व्यवस्था का पतन

1.1 उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया:

उन्नीसवीं शताब्दी के आस्ट्रिया हंगरी में अनेक जातियां रहती थीं । इस स्थिति ने वहाँ जातीय समस्याओं का बाहुल्य उत्पन्न कर रखा था । वहाँ की अगणित जातियों पर नियन्त्रण रखना एक कठिन काम था, परन्तु यहाँ के शासकों को गौरव प्राप्त था कि वे बड़े दीर्घकाल से "पवित्र रोमन" सम्राट कहलाते आये थे तथा आस-पास के शासकों से उनका वैवाहिक सम्बन्ध भी था । इन दोनों स्थितियों का लाभ उठाकर आस्ट्रिया का साम्राज्य विस्तारित हो चला था और हैप्सबर्ग वंश की प्रतिष्ठा यूरोप में स्थापित हो चली थी । नेपोलियन का पतन भी आस्ट्रिया के लिए आनुसंगिक रूप से वरदान साबित हो रहा था, क्योंकि वियना कांग्रेस के निर्णयों के फलस्वरूप आस्ट्रिया का साम्राज्य-विस्तार यूरोप भर में महत्वपूर्ण बन गया था । विशेषकर साम्राज्य का पश्चिमी भाग, जो आस्ट्रिया का भाग कहलाता था, जर्मन जाति के लोगों

का निवास स्थान होने से अधिक प्रभावशाली बन गया । इसी कारण जर्मन भाषा सम्पूर्ण राज्य की भाषा बन गई । इस भाषा का, मैग्यार, चेक, स्वोवाक, पोल, रूथेन्स, कोट, सर्व, स्लोवाक्स, इटालियन, रूमानियन व यहूदियों को (जो आस्ट्रिया हमें रहते थे प्रयोग करने को बाध्य होना पड़ता था ।[1]

वैसे फ्रेंच-कान्ति तथा नैपोलियन के पतन के पश्चात् आस्ट्रिया को साम्राज्य विस्तार में लाभ पहुंचा था परन्तु वहाँ के शासन पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । वहाँ वही सामन्ती व्यवस्था चली आ रही थी । शासक निरंकुश था, सामाजिक ढांचा सामन्तवाद पर आधारित था, कुलीन वर्ग विशेषाधिकार का उपभोग कर रहे थे और अधिकांश जनसमूह दलित एवं पीड़ित था । ऐसी दशा में आस्ट्रिया में लोकतन्त्र अथवा राष्ट्रीयता की कल्पना करना संभव नहीं था । यदि इसके चिन्ह कहीं दिखाई देते थे या इसके पनपने के आसार प्रगट होते थे तो उन्होंने बड़ी निष्ठुरता से कुचल दिया जाता था ।

ऐसा लगता था कि आस्ट्रिया सामन्तवाद, एकतन्त्र और विशेषाधिकार का गढ़ था । धर्माचार्यों का बोलबाला था और चर्च के अधिकार बड़े विस्तृत तथा व्यापक थे । शासक के अधिकारों पर कोई नियन्त्रण न था, उसकी इच्छा के अनुकूल कानून बनते थे या उन्हें तोड़ा मरोड़ा जाता था । सर्वसाधारण के लिए कर देने के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्रता न थी । उच्च पदों पर भर्ती पादरी व सामन्तों के लिए सुरक्षित थी । जनता को बोलने, विरोध करने अथवा निपेक्ष न्याय मांगने का कोई अधिकार न था । कृषि प्रधान देश होने से मध्यम वर्ग या तो था ही नहीं और थोड़ा बहुत था तो वह अकर्मण्य था । बौद्धिक विकास पर प्रतिबन्ध थे और राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा हुआ था । पुलिस निर्भय होकर विचरण करती थी और दमनचक्र का उपयोग करती थी । नियन्त्रण और आतंक का दबदबा ऐसा जटिल था कि आस्ट्रिया में कई वर्षो तक स्वतन्त्र विचारों के चिन्ह तक नहीं दिखाई देते थे । यदि कहीं दबी आवाज में स्वतन्त्रता की चर्चा की जाने की आशंका होती थी तो उसे कठोरता से कुचल दिया जाता था । यदि क्रांति की भावना की गंध यदा-कदा आती थी तो स्वच्छंद शासक उसके प्रसार को बड़ी तेजी से रोक लेते थे । वे यह सोचते थे कि दमन नीति ही स्वतंत्रता के विचारों को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है ।

1.2 मैटरनिक की शासक नीति

हैप्सवर्ग के शासन की एकतन्त्रीय व निरंकुश व्यवस्था तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोपीय इतिहास के प्रतिक्रियावादी युग का प्रमुख प्रणेता काउंट क्लीमेंज मैटरनिक था । उसका जन्म 15 मई सन् 1773 ई. को एक उच्च कुलीन वंश में प्रशा के प्रसिद्ध नगर कोब्लेन्ट्स में हुआ था । उसके पिता होली रोमन साम्राज्य के विदेशी विभाग में उच्च पदाधिकारी थे और वे पश्चिमी जर्मनी में राइन नदी के तटीय भाग की विशाल जागीर के स्वामी थे । इसके माता-पिता की कुलीन स्थिति ने तथा पिता का पवित्र रोमन सम्राट के दरबारी होने की हैसियत ने इसका घराना अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित माना जाता था । साथ ही

1. A.G. Ghant, A history of Europe, p. 726

मैटरनिक ने स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता बढाली थी । 1795 ई. में जब वह 22 वर्ष का हुआ तो उसका विवाह आस्ट्रिया के चान्सलर प्रिंस कानिज (Kannitd) की पोती से हुआ जिससे उसके मान व सम्मान में अभिवृद्धि हुई तथा उसका परिचय यूरोप के बड़े-बड़े राज-घरानों में बढ़ने लगा । शीघ्र ही उसकी उन्नति का पथ प्रशस्त होने लगा जबकि आस्ट्रिया के सम्राट ने उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर बर्लिन, सेण्ट पीटर्सबर्ग और फ्रांस भेजा । फ्रांस की नियुक्ति ने उसे नेपोलियन बोनापार्ट के दरबार में अपनी कुशाग्र बुद्धि और विनोदप्रियता के कारण विशेष सम्मान अर्जित करने का अवसर दिया । इन पदों में रहते हुए उसने यूरोपीयन राजनीति में यथेष्ट अनुभव प्राप्त कर लिया तथा एक कुशल राजनीतिज्ञ होने का परिचय भी दिया । सन् 1809 में उसे आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री और सन् 1821 ई. में वहां का चांसलर बनाया गया और 1848 ई. तक इन पदों पर रहते हुए वह आस्ट्रिया की नीति का कर्णधार बना रहा । सन् 1858 ई. में उसकी मृत्यु हो गई ।[2]

मैटर्निक की शासन नीति को समझने के लिए उसके विचारों पर प्रभाव डालने वाली पृष्ठभूमि में कुछ जानना आवश्यक है । प्रथम तो उसका लालन पालन अभिजात वर्ग के वातावरण में हुआ था जिससे उसमें अहमत्व की भावना स्वाभाविक थी । इस मिथ्या भावना के प्रभाव में वह इतना बहक गया था कि वह अपने आपको सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान समझता था । जो कुछ भी वह करता था वह उसे हर दृष्टि से सही समझता था । "अपने द्वारा उसने कभी जीवन में भूल ही नही की हो अथवा कोई काम नियम के विरूद्ध न किया हो ऐसा वह मानता था ।[3] उसकी मान्यता थी कि संसार का भार उसके कन्धे पर है और उसका जन्म यूरोप के जर्जरित साम्राज्य के पुनरूद्वार के लिए हुआ है ।[4] वह यह कहता था कि उसकी अनुपस्थिति एक रिक्त स्थान बनाएगी ।[5] "वह अपने पद की विशेषता के सम्बन्ध में कहता था कि सब लोग उसकी ओर आशा से निहारते हैं । उसे आश्चर्य था कि जब सभी नहीं सोचते या काम नहीं करते या नहीं लिखते हैं या जानते तो वह अकेला क्यों सोचता है, लिखता है और कर्तव्य परायण है ।[6]

उसके विचारों को क्रान्ति के विरूद्ध बनाने के कुछ विशेष कारण भी थे । उसके पिता का पवित्र रोमन राज्य का उच्च अधिकारी होने से बालक मेटरनिख पर अभिजात वर्ग के संस्कारों को पनपाया । वह उसी वर्ग का एक यन्त्र सा बन गया जिसे अन्य वर्ग

2 C.D. Hazen, Modern Europe, Upto 1945, p.p. 245-246
3 "He had never strayed from the path of eternal law, that his mind had never entertained error"-Hazen.
4 "He spoke of himself as being born'to prop up the decaying structure' of European society. He felt the world resting on his shoulders".- Hazen.
5 "He felt end said that he would leave a void when he disappeared"- Hazen.
6 "My position has this peculiarity", he says, "that all eyes, all expectations are directions are directed precisely that point where I happen to be" He asked the question why among so million men, must I be one to think when others do not think, to act when others do not act, and to write because others know not how" – Metternich.

निम्न वर्ग ही लगने लगे और मैटरनिख अपने को एक उच्च वर्ग समझने लगा । जब वह विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो फ्रांस की क्रान्ति व आतंक के राज्य (Reign of Terror) से पीड़ित फ्रेंच कुलीनवर्ग इधर-उधर सुरक्षा से पीड़ित भाग रहे थे तो उनकी दयनीय दशा देखकर उसकी भावनाएं क्रान्तिकारियों के विरूद्ध बनती जा रही थी । इधर जर्मनी की पुनर्व्यवस्था के फलस्वरूप उसकी पैतृक जागीर नेपोलियन द्वारा जब्त कर ली गई तो वह व्यक्तिगत रूप से क्रांति एवं उस विचारधारा का शत्रु बनाया । वह प्रतिक्रिया के रूप में जीवन भर क्रांतिकारियों के उन्मीलन व दमन में लगा रहा । अतएव प्रारंभिक संस्कार, शिक्षा, कुलीन वर्ग का फ्रांस से भागना तथा उनकी करूणा गाथाएं तथा कुलीन वर्ग से संपर्क एवं यूरोप के दरबारों में नियुक्तियों ने मेटरनिक को प्रतिक्रिया की मूर्ति बना दिया । वह फ्रांस की राज्य क्रांति को घृणा की दृष्टि से देखने लगा । उसके अनुसार क्रांति के विचार संक्रामक रोग थे जिनसे शीघ्रातिशीघ्र पिण्ड छुड़वाना ही श्रेयस्कर था । उसे प्रजातन्त्रीय विचार एक ज्वालामुखी को अग्नि की भांति दिखायी देते थे जिनको दमन करने के वह पक्ष में था । देवत्व के अधिकारों तथा यथावत् परिस्थिति का पोषक होने के नाते वह निरंकुश शासन प्रणाली का पक्षपाती था । "प्रजातन्त्रीय राज्य व्यवस्था को वह रोशनी को छोड़ अंधेरे की ओर जाना मानता था ।[7] " वह कहता था, "जैसा चल रहा है चलने दो, परिवर्तन पागलपन है" ।[8] प्रजासतात्मक शासन के हेतु जो युद्ध लड़े जाते थे उसका वह कट्टर विरोधी था ।

इस प्रकार की प्रतिक्रियावादी विचार-धारा के अनुसार मैटरनिक ने अपनी नीति की रूपरेखा तैयार की जिसे मैटरनिक की पद्धति या व्यवस्था कहा जाता है । इस पद्धति का प्रयोग उसने अपनी गृहनीति एवं विदेश नीति में दृढ़ता से किया ।

1.3 मेटरनिक की गृहनीति:

अपनी पद्धति के समर्थन में उसने गृहनीति का ऐसा स्वरूप बनाया कि जिससे क्रांति के विचारों का प्रसार आस्ट्रिया में न हो सके । ऐसा करना उसने इसलिये भी आवश्यक समझा कि राज्य में अनेक भाषी व मान्यता की जातियां बसी हुई थीं । इनकी संस्कृतियां भी भिन्न भिन्न थीं । ऐसी जातियों में जर्मन, पोल, मगयार, सर्व, चेक, कोट, स्लोवाक आदि मुख्य थीं । राज्य के शासन तन्त्र में तथा सैनिक विभाग में ये विभिन्न जाति के लोग सेवारत थे । इन जातियों में एकता या राष्ट्रीयता की भावनाएं यदि उभरने लगे तो उसको क्रांति के बीज आस्ट्रिया में पनपने की संभावना थी । इस प्रकार की आशंका से बचने के लिए उसने इन जातियों में आपसी फूट डालने के प्रयत्न किए जिससे राज्य की साम्राज्यवादी स्थिति को आँच न पहुंचे । साथ ही इस जाति के सैनिकों व अधिकारियों को राज्य के ऐसे विभिन्न भागों में तैनात किया जाता था जिससे स्थानीय व राष्ट्रीय भावना का मान इनमें न हो सके । उदाहरणार्थ हंगेरियनों को इटली, इटेलियन को गलेशिया तथा पोलो को आस्ट्रिया में रखा जाता था जिससे एक जाति के प्रभाव क्षेत्र में उनसे विभिन्न जाति के लोगों को शासकीय अधिकार दिये जाय जिससे उचित मात्रा में संतुलन भार बना रहे और एक जाति दूसरी जाति से शक्ति तथा विद्वेशात्मक व्यवहार करे ।

7 “Democracy only change daylight into darkness night”.

8 “Keep things as they are, all innovation is madness” – Fybbe, History of Modern Europe, p.433 (-Metternich)

मैटरनिक व्यवस्था का दूसरा परिक्रम यह था कि यथावत् स्थिति बनी रहे और राज्य व शासक सर्वोपरि समझे जाय । राज्य के प्रमुख धर्माचार्य एवं उच्चकुलीन सामन्त प्रभावशील बने रहे जिसमें श्रमिक और कृषकों की अवस्था में कोई सुधार न किया जाए । उसने यह भी ध्यान रखा कि सामाजिक संस्थाओं का मध्यकालीन स्वरूप पूर्ववत् बना रहे जिससे शोषक व शोषित यथावत् बने रहें ।

इस उपरोक्त व्यवस्था को बनाये रखने के लिए दंड व्यवस्था कड़ी कर दी गई तथा पुलिस तथा गुप्तचर व्यवस्था को शासन का आधार माना गया । प्रेस, पाठशाला, विश्वविद्यालय, अध्यापकों और पाठकों पर कड़ी निगाह रखी जाती थी । नाटकघर व बाजार आदि स्थानों पर पुलिस कड़ी निगाह रखती थी । सीमा क्षेत्र में यात्रियों, प्रचारकों और समाचार पत्रों की देखरेख रहती थी और उनके आगमन पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे । कक्षाओं में कौन पढ़ाता है और क्यों पढ़ाया जाता है आदि बातों को गुप्तचर विभाग देखता था । यहाँ तक कि गुप्तचर पाठशालाओं में छाये रहते थे, यह देखने के लिए कि कहीं क्रांति के विचार पढाये तो नहीं जाते हैं । पुस्तकों में वही बातें पढ़ाई जाती थीं जिनसे राजभक्ति का अनुमोदन हो । यदि कहीं राष्ट्रीयता या उदारवाद तथा नागरिक अधिकारों की चर्चा होती थी तो उसको कठोरता से दबाया जाता था और ऐसे व्यक्तियों को बन्दी बना लिया जाता था । इन कड़े नियमों के कारण आस्ट्रिया का नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर यूरोप के अन्य राज्यों की अपेक्षा निम्न स्तर पर पहुंच गया था । मैटरनिक को इन दुष्परिणामों की कोई चिन्ता न थी क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य आस्ट्रिया में राजतंत्र सामन्तवाद व निरंकुशता को बढ़ावा देना था तथा उदारवाद के प्रसार को कठिन करना था । एक अर्थ में मेटर्निक को कुछ वर्षो तक अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफलता मिली थी और विद्रोह के चिन्ह चिरकाल तक वहाँ परिलक्षित नहीं हो सके । वियना प्रतिक्रियावादिता का केन्द्र बन गया जहाँ खुलकर सांस लेना भी संभव न था ।[9]

वैसे तो प्रतिक्रिया की शक्ति की जितनी अधिक सफलता आस्ट्रिया में मिली उतनी अन्य राज्यों में न मिल सकी तथा कई वर्षो तक वहां किसी प्रकार का आन्तरिक विद्रोह नहीं हो सका, परन्तु यह स्थिति एक राख से ढकी हुई आग के समान थी । भीतर ही भीतर असंतोष का वातावरण बना हुआ था जो किसी क्षण उफान की भांति उत्तेजित हो सकता था । इस यथावत् नीति के कई दुष्परिणाम भी हुए । यूरोप में चल रहीं नई प्रगति आस्ट्रिया में प्रवेश न पा सकी जिसके फलस्वरूप यहीं के निवासी अन्य देशों की तुलना में पिछड़ गये । प्रशासनिक सुधारों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों कुंठित हो गई । जब मैटर्निक का पतन हुआ तो आस्ट्रिया के पिछड़ेपन का नग्नरूप सबके सामने स्पष्ट दिखाई देने लगा । उसे अन्य यूरोपीय देशों की हौड़ में आगे आने में समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी । राष्ट्रीय विचारों पर अंकुश लगाने से सामन्त तथा पादरी वर्ग जनता के शोषण द्वारा देश की आर्थिक व्यवस्था पर कुठाराघात करता रहा जिससे वहाँ गरीबी का दौर बढ़ता चला गया । यदि आस्ट्रिया में प्रतिक्रिया का रूप सबसे अधिक प्रखर था तो वह मैटरनिक की गृहनीति के कारण था । इस गृह नीति का चित्रण हेजन ने ठीक ही किया है आस्ट्रिया शासन में निरंकुश, समाज व्यवस्था में सामन्तवादी, विशेष अधिकार में सम्पन्नपोशी तथा जनता के लिए कष्टदायक बना रहा । उसकी यह व्यवस्था

मानव प्रगति से संघर्ष पर, नवीन विचारों से विरोध पर, घृणित पुलिस एवं गुप्तचर व्यवस्था तक सतर्क संवाद नियन्त्रण पर आधारित थी ।[10]

1.4 मैटरनिक की विदेश नीति:

मैटरनिक अपने युग का महान् तथा आस्ट्रिया का उन्नीसवीं सदी का विख्यात राजनीतिज्ञ था । उसने अपनी कुशग्र बुद्धि से यह निर्धारित किया कि यदि आस्ट्रिया में एकतन्त्रीय स्वच्छन्द शासन कायम रखना है और स्वतन्त्र विचार के प्रवेश को वहां नहीं आने देना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि किसी भी कीमत पर नवीन विचारों, जिनका प्रसार आस-पास के राज्यों में हो रहा है, पर अंकुश लगाया जाए अन्यथा आस्ट्रिया की प्रतिक्रियावादी नीति को धक्का पहुँच सकता है । उसने यह भी योजना बनाई कि पड़ौसी राज्यों से ऐसा गठबंधन किया जाए कि वहीं भी निरंकुशता और प्रतिक्रियावादी नीति का प्रचलन किया जाए और उसका समर्थन किया जाये । अतएव इस नीति को क्रियान्वित करने के लिए उसने वियना सम्मेलन में प्रतिक्रियात्मक निर्णयों की भूमिका सर्वोपरि स्थान दिया । इस नीति के अनुसरण के लिए जर्मनी, रूस, इटली, प्रशा आदि पड़ौसी राज्यों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने और उनके सहयोग प्राप्त करने की योजना बनाई । ये सम्पूर्ण व्यवस्था उसकी विदेश नीति के प्रमुख अंग थी । इसी नीति को अन्य राज्यों में लागू करवाने से आस्ट्रिया की व्यवस्था को संरक्षित रखा जा सकता था । यही उसके ध्येय का मूलमन्त्र था । " अपने ध्येय की पूर्ति के लिए मैटर्निक ने पड़ौसी राज्यों पर आस्ट्रिया की नीति लागू करने का अथक परिश्रम किया-जर्मनी में वहाँ के "डाइट" के माध्यम से, इटली में हस्तक्षेप व संधियों से तथा अन्य राज्यों में निकट सम्पर्क के द्वारा । "[11]

मैटरनिक ने अपनी कूटनीति का जाल फैलाने के लिए कई सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य बनाये । उसके विचार में राजा ईश्वर के प्रति उत्तरदायी था न कि उसकी प्रजा के प्रति । नेपोलियन के पतन के बाद इस धारणा को सर्वोपरि बनाया, जिसका फल यह हुआ कि जितने अपदस्त शासक थे वे स्वच्छन्द शासन के पक्षधर बन गये और मैटरनिक उनका नेता बन गया । नेपोलियन ने अपनी विजयों द्वारा विविध राजवंशों को समाप्त कर अपने भाइयों व सम्बन्धियों को यूरोपीय महाद्वीप में शासक बना दिया था । ऐसे राज्यों में स्पेन, पुर्तगाल, इटली, बेल्जियम, हालैंड, स्वीडन, नेपिल्स आदि थे । प्राचीन राजवंशीय शासक इनको पुन: प्राप्त करना चाहते थे और साथ ही साथ आस्ट्रिया, प्रशा व रूस इन राज्यों को हड़प कर अपने अपने राज्यों का विस्तार भी करना चाहते थे । मैटरनिक इन दोनों प्रकार के दावेदारों को संतुष्ट रखना भी चाहता था और आस्ट्रिया की शक्ति भी बढ़ाना चाहता था । एक और प्रश्न चर्च को लेकर था । नेपोलियन ने पोप को बन्दी बनाकर चर्च की सम्पत्ति को बेच डाला था और चर्च को राज्य के अधीन एक

9 Hazen, Modern Europe pp. 244-245

साधारण संस्था बना डाला था । स्वेच्छाचारी शासन के संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि चर्च के अधिकारों की पुनर्स्थापना की जाए । ऐसी व्यवस्था करने के लिए मैटरनिक को प्राचीन राज्यवंशों एवं चर्च का वर्चस्व स्थापित करने, आसपास के राज्यों में एकाधिकार सस्ता संचालन करने तथा आस्ट्रिया की शक्ति बढ़ाने की नितान्त जरूरत थी । इस प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मैटरनिक ने कांग्रेस के सम्मेलन तथा संयुक्त राज्य व्यवस्था द्वारा यूरोपीय राज्यों के सहयोग को प्राप्त करने की योजना बनाई जो उसकी कूटनीति के प्रमुख अंग थे ।

1.5 मैटरनिक और वियना सम्मेलन:

अपनी विदेशी नीति को वैधानिक रूप देने के लिए तथा अपने प्रभुत्व स्थापनार्थ मैटरनिक ने नेपोलियन के पतन के पश्चात् उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विचार करने के लिए सितम्बर 1814 ई. को राजाओं, महाराजाओं, राजनीतिज्ञों तथा सेनापतियों आदि को आस्ट्रिया की राजधानी वियना में आमंत्रित किया । इस सम्मेलन का वह अध्यक्ष भी बन गया । जो राजा, महाराजा अथवा राजनीतिज्ञ सम्मेलन में आये थे उनके अपने अपने निजी स्वार्थ भी थे । प्रशा सैक्सनी के राज्य को, रूस पौलेण्ड को, आस्ट्रिया इटली को, इंग्लैण्ड फ्रांसिसी उपनिवेशों को, फ्रांस खोये हुए भागों को हड़पना चाहते थे । आगन्तुक विशिष्ट व्यक्तियों में रूस का जार अलेक्जैंडर, प्रशा का फैड्रिक विलियम तृतीय, इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि लार्ड कैसलरै, फ्रांस का मन्त्री तेलारा, डेनमार्क, ववेरिया और विरटेम्बुखर्ग के राजा एवं सैकड़ों छोटे बड़े राजा, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, कुलीन सामन्त व सेनापति भी आमन्त्रित थे । केवल टर्की ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया । आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीसी इन आगंतुकों को आतिथ्य कर रहा था । इतने प्रसिद्ध व प्रमुख व्यक्ति एक जगह इसके पूर्व यूरोप में कभी एकत्रित नहीं हुए थे ।

इस सम्मेलन की बैठक के पूर्व नाच, रंग, तमाशों में ये लोग इकट्ठे होते थे और आमोद-प्रमोद के वातावरण में भावी यूरोप के मसले तय करते थे । नियमित रूप से प्रस्ताव लाने, उन पर बहस करने या वोट लेने आदि की प्रक्रियाओं का वहां कोई स्थान न था । नाच गान के अवसरों पर सीमा निर्धारण या राज्यों के उत्तराधिकारियों के चुनने का काम कर लिया जाता था । शक्ति संतुलन, अधिकार का सिद्धान्त, राज्य पद्धति, सीमा निर्धारण आदि समस्याओं जैसे मसले पहले से ही इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा और फ्रांस ने अपने आप हल हुई

10. "Absolitism in Government, feudalism in society, special privileges for the favoured few, oppression and misery for the masses, such was the condition of Austria..."
    "His system, at war with human nature, at war with the modern spirit, rested upon a meddlesome police, upon elaborate espionage, upon vigilant censorship of ideas".
11. "The best protection for the Austrain system was to extend it to other countries." Hazen, Modern Europe, p. 246.

औपचारिक बैठक द्वारा, जो 15 जून 1815 ई. में बुलाई गई, स्वीकृति ले ली गई । यह बैठक प्रथम व अन्तिम थी ।

वियना कांग्रेस में पुनर्निर्माणार्थ जो निर्णय लिए गए उनमें प्रमुख इस प्रकार थे । फ्रांस की सीमा लगभग वही रखी गई जो फ्रांस की क्रांति के पूर्व थी । उसको निर्बल करने के लिए बेल्जियम और हालैण्ड मिलाकर उसके उत्तरी सीमा को भविष्य के भय से सुरक्षित कर दिया गया । फ्रांस में बोर्बन वंश का पुनरूद्वार के विचारानुकूल लुई सोलहवें के छोटे भाई को फिर से लुई अठारहवें के नाम से गद्दी पर बिठाया गया ।

बेल्जियम व हालैण्ड के संयुक्त राज्य में प्राचीन औरेंजवंश की स्थापना की गई । फ्रांस से दक्षिण पूर्वी सीमा से आक्रमण की संभावना की रोकथाम के लिए जिनेवा, पीडमाउंट और सेवाय सार्डीनिया में मिला दिये गये । स्पेन तथा नेपिल्स में बोर्बो वंश की स्थापना की गई । डेन्मार्क ने चूंकि नेपोलियन को सहायता की थी उसको नार्वे से हाथ धोने पड़े और वह स्वीडन को दे दिया गया । स्वीडन को तीन नवीन केंटन देकर उसका विस्तार किया गया । आस्ट्रिया को लोम्बार्डी, वैनिस, इलीरिया के प्रान्त, टाइरोल, गैलेशिया तथा एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे प्राप्त हुए । रूस को फिनलैण्ड, वसर्बिया और वारसा की ग्रांड डची हाथ लगें । पोलैण्ड को समाप्त कर अपने-अपने सीमा के भाग रूस, आस्ट्रिया और प्रशा ने हथिया लिए । प्रशा को पोयेरेनिया, पोसन, थार्न, डाजिंग, वेस्टफेलिया का राज्य (हनोदर छोडकर) तथा सैक्सनी के राजा का 40 प्रतिशत भूभाग राज्य विस्तार के लिए दिये गये । इटली के छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये जिन पर सार्डेनिया, आस्ट्रिया तथा पोप का अधिकार हो गया, तथा इटली पहले की भांति एक केवल भोगोलिक अभिव्यक्ति रह गया ।[12]

जर्मनी में नेपोलियन द्वारा बनाया गया राइन का राज्य समाप्त कर 31 रियासतों का एक संघ बनाया और मैटरनिक राज्य परिषद् का अध्यक्ष बन गया । राज्य परिषद में राजाओं के द्वारा भेजे गये प्रतिनिधि जाते थे जो अध्यक्ष की नीति का अनुमोदन करते थे । अन्त में इंग्लैण्ड को माल्टा, हैलिगोलैण्ड, ट्रीनीडेड, लंका, केप कोलोनी, मौरिशस, टोबैगो जर सेंट लूसिआ द्वीप मिले । ये भू-भाग व द्वीप समूह इंग्लैण्ड को स्पेन, हालैण्ड व फ्रांस से लेकर दिये गये थे ।

इन बंटवारों व राज्यों के विभाजन तथा विघटन की प्रक्रिया के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण निर्णय भी लिया गया था जो दास प्रथा के उन्मूलन के प्रस्ताव का था । उन दिनों दासों के बेचने, उन पर अत्याचार करने, उनकी शक्ति के उपरान्त काम लेने, उन्हें कठोर यातना देने आदि की प्रथा प्रचलित थी । कांग्रेस ने इस प्रथा को मानव अधिकार के प्रतिकूल माना और उसके विरोध में प्रस्ताव पास किया । इसी तरह यूरोप की नदियों व समुद्र पर नाविक अधिकार के नियम पर विचार किया गया जिससे पारस्परिक व्यापार की सुविधा हो सके । ये एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय विधान के निर्माण का प्रारंभिक प्रयास था परंतु इंग्लैण्ड ने इसका विरोध किया जिससे ये विधान क्रियान्वित न हो सका ।

1.6 वियना सम्मेलन का मूल्यांकन

वियना सम्मेलन में जिन बिन्दुओं पर विचार करना था वे मैटरनिक के मस्तिष्क की सूझ थे । ये उनकी दूरदर्शिता व कुशाग्र बुद्धि का परिणाम था कि उसने नेपोलियन के समय के यूरोप के नक्शे को इस प्रकार बदल दिया कि जिससे आस्ट्रिया की सीमा की वृद्धि हुई एंव अपदस्थ राजाओं को पुनर्स्थापित कर दिया गया । जो फ्रांस का वैभव नेपोलियन के समय बन पाया था वह गौरव मैटरनिक ने 1815 में आस्ट्रिया को दिलाया । यूरोप के सभी कूटनीतिज्ञ आस्ट्रिया को प्रतिष्ठित दृष्टि से देखने लगे और उसकी नीति का अनुसरण करने लगे । सबसे बड़ी उपलब्ध यह थी कि उसने

अपनी कूटनीति से यूरोप के शासकों को अपने अपने स्वार्थ की ओर ऐसा मोड़ा कि सभी उसके प्रशंसक बन गये और जिन निर्णयों को उसने जिस और मोड़ा वे उसी दिशा में मुड़े । इस चाल से उसने अपने प्रभाव को यूरोप में स्थापित कर लिया । उसने फ्रांस के पंख इस तरह काट दिये कि उसके उभरने के अवसर समाप्त हो गये । जिस क्रांति से एकता, समानता व राष्ट्रीयता की दुहाई दी जाती थी उसी क्रांति के विरूद्ध उसने वातावरण बना कर प्रतिक्रियावादी विचारों की मान्यता स्थापित कर दी । वह आस्ट्रिया के सम्राट को "होली रोमन एम्पायर" का सम्राट तो न बना पाया परन्तु जर्मनी का नेतृत्व उसे दिलाकर एक नई प्रतिष्ठा अर्जित की ।

उसकी वियना सम्मेलन की उपलब्धि इस अर्थ में भी थी कि सभी सम्राटों का सहयोग पाकर यूरोप में अराजकता दूर कर शांति की स्थापना हो सके । नेपोलियन द्वारा किये गये विनाश के विरूद्ध आवाज उठाकर यूरोप के सम्राटों व राजनीतिज्ञों को एक मंच पर लाकर मैटरनिक ने अपने उद्देश्यों को निर्णयों का जामा पहिना एक बड़ी सफलता प्राप्त की । जर्मनी में 31 राज्यों की राज्य परिषद् बनाना और उसका नेतृत्व करना उसके एकीकरण का प्रारूप था जिसका श्रेय मैटरनिक को जाता है । मानवता के क्षेत्र में दासता के विरूद्ध प्रस्ताव लाना उसके सद् भावना के वातावरण बनाने में बड़े महत्व का है । यूरोप में सभी राज्यों को मिलाकर उस समय की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रारूप और नवयुग का सूत्रपात था ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेस के निर्णय में स्वार्थ तथा महत्वाकांक्षाएं छिपी हुई थी, अतएव निर्णायकों ने अपने राज्यों की सीमा विस्तार में जिन प्रदेशों को एक राज्य से लेकर दूसरे राज्य में सम्मिलित किया था उसमें यह नहीं सोचा गया कि क्या ऐसा करने से जनमत की तो उपेक्षा नहीं की जा रही है? परन्तु कांग्रेस के सदस्य तो क्रांति और राष्ट्रीयता के विचारों के विरूद्ध इतने अधिक थे कि न्याय व अन्याय का उन्हें कोई भान ही न था । वे तो यह समझ रहे थे कि राजाओं में दैवी शक्ति है जिसका विरोध करना घोर अपराध है । उनकी मान्यता थी कि यदि कोई व्यक्ति इन कार्यो में हस्तक्षेप करता है या उनके विरूद्ध आवाज उठाता है तो उसको दण्डित करना उनका धर्म है । मैटरनिक व उसके सहयोगी शक्ति

12. “it was Metternich’s desire that Italy should be a collection of independent states, should be only a Geographical expression.” Hazen, Modern Europe. P-234

सन्तुलन की आड़ में फ्रांस व उसके सहयोगी राज्यों को निर्बल करने या इधर-उधर के पड़ोसी राज्यों के प्रदेशों को छिनने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने इस ओर कोई ध्यान न दिया कि जिन लोगों को दूसरे राज्य के अधीन बनाये जा रहे हैं उनमें धर्म, भाषा या जाति व मान्यताएं आदि क्या हैं । ऐसे कार्यो में परम्परा या राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ण उपेक्षा की गई ।

उदाहरणार्थ बेल्जियम का कैथोलिक जनता को जो केल्ट भाषा बोलनी थी उसे होलैण्डवासी प्रोटेस्टेन्टों तथा ट्यूशन भाषा लोगों से संयुक्त कर दिया । इसी प्रकार नार्वे को स्वीडन के साथ और फिनलैंड को रूस के साथ मिलाकर विभिन्न परम्पराओं पर भारी आघात पहुंचाया । पौलेण्ड की कैथोलिक जनता का विभाजन रूस के यूनानी चर्च तथा प्रशा एवं आस्ट्रिया के प्रोटेस्टेन्टों के साथ जोड़ दिया । इस प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बियों की भावनाओं को भारी ठेस पहुंचाई गई । सम्पूर्ण राइन प्रदेश की कैथोलिक जनता को प्रोटेस्टेन्ट प्रशा के मिलाकर उनके साथ बड़ा अन्याय किया ।

एक देश दूसरे देश में मिलाया जाना तथा एक परम्परा के लोगों को दूसरे पर थोपा जाना एवं प्रजातन्त्रवाद को दबाया जाना थोड़े समय तो जनता ने इसलिए सहन कर लिया कि कुछ समय की शांति वांछनीय थी । परन्तु ये सब कृत्रिम व्यवस्था थी जो अधिक समय तक स्वीकार नहीं की जा सकती थी । लगभग 15 वर्ष की अवधि में बेल्जियम हालैण्ड से और नार्वे स्वीडन से अलग हो गये । जर्मनी और इटली को एकीकरण भी वियना के दोषों के परिणाम थे । यूरोप में सर्वत्र राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद एवं प्रतिक्रियावाद का संघर्ष आरंभ हो गया । जनता की आवाज की गज इतनी प्रबल हो गई थी कि प्रतिक्रियावादी शासकों के आलाप उसके सामने निर्बल हो गया । इस स्थिति का मुख्य कारण था कांग्रेस में लिये गये निर्णयों में उच्च सिद्धान्तों का आधार नहीं होना । जो भी आपस में सौदाबाजी हुई थी उसकी जड़ स्वार्थ में निहित थी । इन समझौते के ठेकेदारों ने यूरोप के पुनर्गठन, शासन की पुनर्स्थापना, समाज की समुचित व्यवस्था, चिर शांति की स्थापना आदि आदर्शो की जो दुहाई दी जा रही थी उसके पीछे उनकी महत्ता और उदारता का ढोल पीटना मात्र था, जिससे अधिक समय जनता को गुमराह नहीं किया जा सकता था ।

हैजन के अनुसार वियना कांग्रेस विशेष अधिकारी वर्ग का समूह था जिसे फ्रांसीसी क्रांति का प्रजातन्त्रीय और जातीयता की भावनाओं के प्रति कोई निष्ठा न थी । इसमें सभी शासक राज्यों की व्यवस्था इस प्रकार कर रहे थे जैसे वे उनकी निजी सम्पत्ति थी, जिसमें प्रजा का कोई हिस्सा न था । ऐसी व्यवस्थाई स्थाई न बन पाई क्योंकि इसमें जनमत की पूर्ण उपेक्षा की गई थी । भावी यूरोप इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर यूरोप में प्रजातन्त्र के लिए किये गये सफल प्रयत्न वियना सम्मेलन की इस भूल को सुधारने के प्रयास थे ।[13]

13. 'The Congress of Vienna was a Congress of aristocrats, to whom the ideas of nationality and democracy as proclaimed by the French Revolution were incomprehensible or loathsome. The rulers rearranged Europe according to their own desires, disposing of it as if it were their own personal property, ignoring the sentiment of nationality. There could be no settlement because they ignored the factors that alone would make the settlement permanent. The history of Europe after 1815 was destined to witness repeated and often successful attempts to rectify this cardinal error of the Congress of Vienna." Hazen, Modern Europe, pp. 239-240

1.7 संयुक्त व्यवस्था:

मैटरनिक की कूटनीति का महत्वपूर्ण अंग मित्र राष्ट्रों की संयुक्त व्यवस्था थी । यह व्यवस्था वियना निर्णयों को स्थायित्व प्रदान करने का माध्यम था जिससे सभी राष्ट्र मिलकर युद्ध से उत्पन्न भीषण समस्याओं को सुलझाने तथा यूरोपीय राष्ट्रों में शांति स्थापित करें । इन राष्ट्रों का यह भी उत्तरदायित्व था कि युद्ध की भावी संभावनाओं को रोकें । इन प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी राष्ट्रों को रूस के जार अलेक्जेंडर द्वारा घोषित पवित्र संघ (Holy alliance) का अनुमोदन करना था । इसके साथ-साथ मैटरनिक ने चतुमुर्ख मित्र मण्डल का संगठन किया । इसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसके सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करते रहे जिससे यूरोप में शांति

बनी रहे और क्रांतिकारी तत्वों का दमन होता रहे । सभी यूरोप के राष्ट्रों को इस मण्डल द्वारा एक सूत्र में बाँध कर मैटरनिक ने यूरोप की सभी राजनीतिक संस्थाओं पर अपना प्रभाव स्थापित किया तथा उसी कुचक्र का प्रयोग उसने मित्र-राष्ट्रों के राज्यों में करवाया । यदि कहीं भी क्रांतिकारी भावनाएं उठती थीं तो वह उनको संयुक्त-व्यवस्था के सदस्यों की बैठक के निर्णयों से दबाता था । 1815 से 1825 तक होने वाले सभी सम्मेलनों में उसने मुख्य नायक का काम किया । अगर आगे चलकर विविध राज्यों के स्वार्थ के दृष्टिकोण बीच में नहीं आते तो मैटर्निक इस व्यवस्था को अत्यधिक शक्तिशाली बना देता । यह उसकी कूटनीति की देन थी कि वियना सम्मेलन के निर्णय कुछ समय तक यूरोप में टिक पाये । इस व्यवस्था के कई पहलू हैं जिनका विश्लेषण यथा स्थान किया जाएगा ।[14]

1.8 मेटरनिक का पतन

जिस कूटनीति के जाल को मैटरनिक ने यूरोप में फैलाया था वह एक सीमित समय तक ही प्रभावशाली रहा । भीतर ही भीतर जन-आन्दोलन की आग सम्पूर्ण मध्य यूरोपीय भागों में बढ़ती रही । मेटरनिक की प्रतिक्रियात्मक नीति का विरोध आस्ट्रिया में भी होने लगा । सन् 1948 का वर्ष आस्ट्रिया के भाग्यविधान के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ । वहाँ उसका खुलमखुल्ला विरोध होने लगा, विशेष रूप से आस्ट्रियन पार्लियामेन्ट में उसके खिलाफ एक शक्ति सम्पन्न दल बन गया जो इसकी नीति की निन्दा करने में नहीं हिचकता था वियना अब क्रांति की दावाग्नि का केन्द्र बन गया । जगह-जगह लुई काँसूथ तथा फ्रांसिस डीक के नेतृत्व में भाषण होने लगे तथा प्रबुद्ध वर्ग ने भी इस प्रकार के आन्दोलन का समर्थन किया । नितात्त 13 मार्च 1848 को मजदूरों व विद्यार्थियों के जुलूस ने राजप्रासाद और मैटरनिक के भवन को घेर लिया । सेना द्वारा उन पर गोलियां चलाई गई पर भीड़ उग्र होती गई । जब नागरिक रक्षक दल को भीड़ को तितर-बीतर करने के आदेश दिये गये तो उसकी अवहेलना की गई । अन्त में मैटरनिक समझ गया कि उसकी सत्ता के दिनों का अन्त आ गया है । वह भेष बदल कर महलों से निकल इंग्लैण्ड प्रयाण कर गया । उसके वृद्ध मित्र टेलिंगटन के ड्यूक ने उसका

14. डा० गोपीनाथ शर्मा, यूरोप का इतिहास पृ. 32-33

स्वागत किया । ये दोनों अपनी पुरानी याद दोहरा कर अपनी आयु के शेष दिन बिताते रहे ।जिस प्रकार 1789 में बेस्टिल के पतन ने फ्रांस की काया को पलट दिया उसी प्रकार 1848 की जन क्रांति ने आस्ट्रिया तथा समस्त यूरोप की तानाशाही शासन को धराशाई कर एक नवीन युग को आमन्त्रित कर दिया ।

यह घटना एक व्यक्ति का पतन नहीं था, वरन् उस सारी व्यवस्था के पतन के सूत्रपात की घटना थी जिसने बड़े समय तक प्रजासत्तात्मक प्रवृतियों को अवरूद्ध कर रखा था । इसका यह भी अर्थ था कि, अन्ततोगत्वा फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धान्तों की विजय हुई । यहीं से यूरोप के समस्त राज्यों में समान स्थिति के समाज के प्रभुत्व का उदय होता है और उच्च अधिकारी वर्ग के ह्रास का आरंभ होता है ।

मैटरनिक के प्रतिक्रियात्मक शासन के सिद्धान्तों का वैध शासन की बढ़ती हुई मांग से कोई मेल न था जिससे उसकी तीव्रगति से वह मुकाबला न कर सका । अब जनतान्त्रिक सिद्धान्त इतने लोक-प्रिय और व्यापक हो गये थे कि उनके सामने मैटरनिक की व्यवस्था टिक न सकी ।

उदारवाद का प्राबल्य वियना तथा हंगरी के कई भागों के मध्यमश्रेणी के लोगों में जिनमें श्रमिक, दस्तकार, अध्यापक, व्यापारी आदि थे, इतना अधिक हो चला था कि मैटरनिक की दमन-नीति से उसमें अधिक तीव्रता आ गई और फलत: उसके दबाव के सामने मैटरनिक को घुटने टेकने पड़े । स्वयं मैटरनिक ने स्वीकार किया था कि उसके शासनतन्त्र और जनता के उदार विचारों में संघर्ष तो प्रारंभ से ही चल रहा था जिसको वह अपनी शक्ति से दबाता रहा, परन्तु इस संघर्ष के फलस्वरूप उदार विचार के पक्ष की विजय हुई । वह व्यक्ति को तो समझ पाता था परन्तु समय की गति पहिचानने की उसमें क्षमता नहीं थी ।

न केवल आस्ट्रिया में ही मैटरनिक को संघर्ष करना पड़ा, अपितु आस्ट्रिया के अधीनस्थ सभी भागों में समाजवाद, उदारवाद एवं राष्ट्रवाद के पक्ष में आवाज उठ चुकी थी । मैटरनिक को इन आन्दोलनों को अकेले सामना करना पड़ा । वह सड़ी गली संस्थाओं का पोषक था जो असम्मानित हो चली थीं और उसकी जनता समय की आवश्यकता पर जोर दे रही थी । इस बलवती मांग के कारण चान्सलर को स्वत: अपने पद से हाथ धोना पड़ा ।

इन व्यक्तिगत निर्बलताओं के साथ इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति ने यूरोप की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को एक बहुत बड़ा पलटा दिया जिसके फलस्वरूप प्राचीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढांचे की दीवारें ढहने लगीं । ऐसी दीवारों की रक्षा के लिए वह सतत् प्रयत्न करने लगा जो उसकी अदूरदर्शिता थी ।

मैटरनिक का रूख जो यूरोप के अन्य राज्यों के सम्बन्ध में था उसने भी उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाई । इन राज्यों के आंतरिक मामलों में पड़कर उसने अपने को एक दमन-नीति का महान् पोषक सिद्ध किया जिससे सभी राष्ट्रों की जनता उसको अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी । अब उसके घर में आग लगी और कौशाथ तथा लुई सगज आदि आन्दोलनकारियों ने उसके विरूद्ध आवाज उठाई, तो किसी भी देश ने उसके साथ सहानुभूति न रखी । ऐसी परिस्थिति में उसकी प्रणाली का अवसान होना ही स्वाभाविक था ।

इंग्लैण्ड के राजनीतिक विचारक, जिनमें कैसलरे, कैनिंग आदि प्रमुख थे, उसकी नीति के पक्ष में न थे । संयुक्त व्यवस्था में उसके रवैयों का इन कूटनीतिज्ञों ने पद-पद पर विरोध किया जिससे मैटरनिक की विचारधारा का प्रभाव क्रमश: यूरोप की राजनीति से हटता गया और अंत में उसके पतन के साथ उसकी प्रणाली का भी अन्त हो गया ।

1.9 मैटरनिक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन:

हैजन ने मैटरनिक को आस्ट्रिया का महान् कूटनीतिज्ञ कहा है ।[15] परन्तु नेपोलियन ने एक बार उसके सम्बन्ध में यह भी कहा था कि मैटरनिक षड्यन्त्र को भूल से राजनीति समझे हुआ था ।[16] अलेक्जेंडर तो उसे झूंटा कूटनीतिज्ञ कहता था । उसके विरोधी उसे निरा षड्यन्त्रकारी, अवसरवादी तथा दिखावटी व्यक्ति कहते थे ।[17] उदारवादियों की दृष्टि में वह निरा प्रतिक्रियावादी तथा जनता की भावना का कट्टर शत्रु था । हॉर्नशा ने उसे प्रतिकियावादी नीति के अति का प्रतीक तथा राष्ट्रीयता और जनतन्त्र का शत्रु बताया है।[18] उपरोक्त दृष्टिकोण जो मैटरनिक के सम्बन्ध में है उनमें सच्चाई की मात्रा अधिक है, क्योंकि जिस नीति का अवलंबन उसने आस्ट्रिया तथा अन्य राज्यों के साथ किया, वह इन कथनों के समर्थन के पूरे प्रमाण हैं । उसने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि वह दुनिया में या तो बहुत जल्दी आया या बहुत विलम्ब से । उसने अपने आपको जमाने के यौवन के सामने वृद्ध बताते हुए अपनी असंगत स्थिति को माना है ।[19] उसकी त्रुटि के आधार व उसकी प्रकृति को समझ कर सेन्ट हैलना में नेपोलियन ने भी उसकी आलोचना में ठीक ही कहा था कि वाटरलू का युद्ध यूरोप की स्वतन्त्रता के लिए इतना भयावह होगा जितनी फिलापी की लड़ाई रोम की आजादी के लिए खतरनाक सिद्ध हुई ।[20] उसमें प्रतिक्रिया की भावनाएं इतनी प्रबल थी कि उसे प्रजातन्त्रवाद तथा राष्ट्रीयता के प्रति अत्यन्त कटुता थी । वह मानता था कि ' 'मेरा जन्म यूरोपीय समाज की पतनोन्मुख प्रवृत्ति को सुदृढ़ करने और उसकी रक्षा करने के लिए ही हुआ है ।[21] वह इतना हटी था कि अंतिम दिनों तक भी वह कहता रहा कि "मैं अपने प्रेरित पथ से कभी विचलित नहीं हुआ । जो कुछ मैंने किया वह मेरे अन्त करण की आवाज थी । मैंने कभी कोई गलत काम नहीं किया । वह यह भी मानता रहा कि मेरे निधन के बाद एक रिक्त स्थान बन जायेगा ।[22] ये कथन उसके अहम् भाव के प्रतीक हैं जिसके कारण उसे अपने दुर्दिन देखने पड़े । उसको अपने बारे में कितना बड़ा भुलावा था जब वह माने बैठा था कि सम्पूर्ण जगत् का भार उसके कंधे पर है।

15 “He was the most famous Statesman Austria produced in the nineteenth century. ‘Hazen.

16 He mistock intriguer for statesmanship”.

17 “An intriguer, as an opportunist, as polished dust.” Hazen

18 “Metternich represented reaction in its extreme form. Regarding continental politics form the Austrian standpoint he was the avov=wed and implacable enemy of both democracy and nationalist." He arnshaur- Mailn currents of European History, p. 121

19 I have come into the world either too early or too late-while he was growing old and feeble, the world was renewing its youth.

20 “The battle of waterloo”, remarked Napoleon at S. Helena, “Will be as dangerous to the liberties of Europe as the battle of philipi was dangerous to the liberties of Rome.”

21 “His egotism was olympian. He spoked of himself as being born tok prop up the decaying the structure society.”- Hazenm

22 “He himself admitted at the end of a long career that he had never strayed from the path of eternal law: that his mind had never entertained error. He felt and said that he would leave a void when he disappeared.” Hazenm

परन्तु आलोचना की दृष्टि और वस्तुत: स्थिति के विभिन्न पक्ष हैं । ऐसी स्थिति में परिस्थिति तथा आंशिक सफलता के सन्दर्भ में भी मैटरनिक का मूल्यांकन करना समीचीन होगा । उसने जिस नीति का अनुसरण किया था वह आस्ट्रिया के साम्राज्य की सुरक्षा के हित में थी । एलिसन फिलिप्स ने इसी सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि वह मैटरनिक था, जिसने आस्ट्रियन नीति को बल और निश्चयता दी जिसके कारण वह पीछे जाकर अपने को नेपोलियन का विजेता मानने लग गया । यह उसी नीति का फल था कि यूरोप लगभग चालीस वर्ष पर्यन्त शांति का उपभोग करता रहा और यह उसके विफल जीवन में एक महान् सफलता का चिन्ह है ।[23]

इसके अतिरिक्त हम इस बात को भी नजरअन्दाज नहीं कर सकते कि लहू लुहान यूरोप को शांति की आवश्यकता थी जिसको उसने येनकेन प्रकार से प्रदान की । विस्थापित राजाओं को स्थानापन्न कर उसने अपने समर्थकों का दल बना दिया था जिसने आस्ट्रिया के आस-पास सुख शांति स्थापित करने में कोई कसर न रखी । यदि वह एकाएक राष्ट्रीयता को प्रश्रय देता तो अराजकता का वातावरण ज्यों का त्यों बना रहता । वह अपने ढंग का एक ही व्यक्ति था जिसके नाम पर "मैटरनिक युग" की व्यवस्था प्रसिद्ध हुई । इस व्यवस्था के बल पर फ्रांस के इर्द गिर्द ऐसी दीवार खड़ी कर दी की क्रांति की ज्वाला फिर से न भड़क सके । ये उसकी कूटनीति का सफल प्रयास था । यदि मैटरनिक युग का पतन हुआ तो उसकी व्यवस्था का दोष नहीं था, दोष उसके अथक प्रयास की थकान और उसके यूरोप के साथियों का था जिन्होंने उसका अंत तक साथ नहीं दिया ।[24]

1.10 बोध प्रश्न

1. उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया की स्थिति की विवेचना कीजिए
2. मेटरनिक की गृह नीति व विदेश नीति की समीक्षा कीजिए ।
3. वियना सम्मेलन का मूल्यांकन कीजिए ।
4. संयुक्त व्यवस्था के बारे में आप क्या जानते हैं ।
5. मैटरनिक के पतन के क्या कारण थे?

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1. थोम्पसन, यूरोप सिंस नेपोलियन
2. ए.जे.पी. टेलर. दि स्ट्रगल फोर दि मास्टरी आफ यूरोप
3. ली बेन्स, सिंस 1870
4. जी. पी. गूच,आधुनिक का इतिहास यूरोप
5. सी. डी. एम. केटलवी, आधुनिक काल का इतिहास

23. It was he who had given to Austrain Policy the vigorous and certain direction which enabled him afterwards to boast the Conqueror of Napoleon.” Alison Philips.

24. “The ‘Metternich System’, showed unmistakable signs of falling to ieces. Its eponymous founder was growing old and weary; the sense f failure weighed upon him and snapped his vigour. The autocarts, also, for whom he toiled, gave him but little assistance whether material or moral.”- Hearnshaw-Main Currents of European History, pp-193-194

इकाई-2

यूरोप में 1830-70 ई. के मध्य कृषि विस्तार

इकाई की रूपरेखा:

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.3 भूमि का उपजाऊपन

2.3.1 जानवरों की खाद का उपयोग

2.3.2 भूमि को ऊसर छोडने की विधि

2.3.3. फिल्ड-व्यवस्था

2.4. अठारहवीं सदी में कृषि में प्रगति

2.4.1 हरी घासों एवं सर्द ऋतु की जड़ों की खोज

2.4.2 भूमि की घेराबंदी

2.5 कृषि सुधारों के प्रभाव

2.6 1830 एवं 1870 के मध्य विस्तार एवं कृषि सुधारों में प्रगति

2.7 बोध प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा यह उद्देश्य है कि विस्तार से आपको यह बताया जाये कि 1830 से लेकर 1870 ई0 के मध्य कृषि में किन कारणों से विस्तार हुआ । लेकिन इस समय के विस्तार को अच्छे तरीके से तभी समझा जा सकता है जबकि हमें उसके परिप्रेक्ष्य की पूरी जानकारी हो । इसके लिए हमने अठारहवीं सदी के कृषि सुधारों का संक्षेप में वर्णन किया है । इन सुधारों ने उन्नीसवीं सदी के कृषि विस्तार के लिए एक अर्थ में भूमिका तैयार की । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यूरोप की दो सदियों के कृषि इतिहास की जानकारी मिल जायेगी । आपको निम्न बातों का ज्ञान हो जायेगा-

1. अठारहवीं सदी में कृषि सुधार एवं उनकी प्रकृति ।

प्राकृतिक खाद प्राप्ति की समस्या एवं उसका समाधान ।

भूमि को परती छोड़ने की विधि से लाभ एवं हानि ।

भूमि की घेराबंदी उसके लाभ ।

2. कृषि सुधारों के प्रभाव ।

3. 1830 से 1870 ई0 के मध्य कृषि विस्तार- में सुधार, कृत्रिम खादों की खोज, कृषि मशीनों की खोज, वित्तीय संगठन एवं पूंजी निवेश एवं यातायात के साधनों का विकास ।

2.1 प्रस्तावना

1830 से 1870 ई0 के मध्य के काल को कृषि विस्तार की दृष्टि से यूरोपीय कृषि का स्वर्णकाल कह कर पुकारा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । इन चालीस सालों के दौरान कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई एवं कृषि ने नए मानदण्ड स्थापित किये । यूरोप के लगभग सम्पूर्ण देश इस प्रगति से पूर्ण अथवा आशिक रूप से प्रभावित हुऐ । इस अभूतपूर्व कृषि विस्तार के लिए विभिन्न तत्व उत्तरदायी हैं जिसमें कृषि का व्यापारीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप शहरी आबादी की वृद्धि ने उपभोक्ताओं की संख्या में कई गुना वृद्धि की । स्वभावत: बाजारों का आकर्षण लगातार मजबूत होता चला गया । जनसंख्या की वृद्धि ने कृषि-उत्पादों की मांग को तीव्रता से बढ़ाया । इस बड़ी हुई माँग को पूरा करने के प्रयास ने कृषि विस्तार के नये द्वार खोले । कृषि में नई खोजों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । इन खोजों की पृष्ठभूमि में मूलत: व्यापारिक प्रवृत्ति सक्रिय थी । इन चालीस सालों के दौरान कृषि-क्षेत्र में मशीनों की खोज, कृत्रिम खादों के निर्माण, यातायात के साधनों के विकास एवं पूंजी निवेश की बढ़ती प्रवृत्ति ने कृषि की काया पलट दी ।

2.3 भूमि का उपजाऊपन

उन्नीसवीं शताब्दी के इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों को पूरे तौर पर समझने के लिए कृषि की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया को समझना अति आवश्यक है । हर युग के किसान के सम्मुख एक प्रश्न था जो उसे विचलित किए रहता था- वह था कि भूमि के उपजाऊपन को किस प्रकार बरकरार रखा जाये? इसी प्रश्न ने किसान को हमेशा नवीन तरीकों की खोज की ओर अग्रसर रखा । यह बात बिल्कुल सही है कि बिना आराम दिए निरन्तर खेती भूमि के उपजाऊपन को समाप्त करके उसे बंजर बना देती है । इसलिए भूमि के उपजाऊपन के स्तर को बनाए रखने के लिए किसान मुख्यत: तीन तरीके प्रयोग में लेता रहा था: -

2.3.1 जानवरों की खाद का उपयोग

पशुओं के गोबर का प्रयोग भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने अथवा बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है और यही सर्वाधिक उपयोगी साधन था । यूरोपीय देशों के किसानों के सम्मुख पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक खाद की उपलब्धि एक अत्यन्त ही कठिन बात थी क्योंकि सर्दियों के मौसम में पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था अत्यन्त मुश्किल कार्य था । तत्कालीन किसान "सर्दी की जड़ों (Winter roots) से नितान्त अनभिज्ञ थे । सर्दियों में जानवरों के निर्वाह के लिए यह एक अत्यन्त आवश्यक फसल है । परिणामत: जानवरों की खाद की आपूर्ति कम मात्रा में हो पाती

थी अत: किसानों ने भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए दूसरे साधन प्रयोग में लिए ।

2.3.2 भूमि को ऊसर (Fallow) छोड़ने की विधि

भूमि की उर्वरा शक्ति की पुन-प्राप्ति के लिए उसके एक हिस्से को प्रति दो या तीन वर्ष के लिए अजुता या ऊसर छोड़ दिया जाता है । इस आराम के दौरान भूमि अपनी उर्वरा शक्ति को पुन: प्राप्त कर लेती है । अजुति भूमि पर दो या तीन बार हल चलाया जाता है एवं सूर्य एवं हवा से पुर्नशक्ति प्राप्त करने के लिए उसे यूं ही खुला छोड़ दिया जाता है । इस पद्धति के साथ-साथ एक के पश्चात् दूसरी फसल उगाहने का कम भी चलता रहता है । इसका तात्पर्य है कि जमीन के एक हिस्से पर एक वर्ष गेहूँ तो दूसरे वर्ष उसी हिस्से पर गेहूँ के स्थान पर जब उगाई जाएगी । इस क्रम में भूमि का एक हिस्सा ऊसर छोड़ दिया जाता है । अगली बार उस पर कुछ बोया जाता है तब दूसरा हिस्सा ऊसर छोड़ दिया जाता है । यही कम चलता रहता है । इस पद्धति में भूमि अपनी उपजाऊ शक्ति को लम्बे समय तक बनाए रख सकती है वनस्पति उसके कि जिसमें भूमि पर एक ही फसल लगातार उगाही जाती रहती है ।

अठारहवीं सदी के यूरोप में "थ्री फिल्ड व्यवस्था" प्रचलित थी जो तत्कालीन युग में सर्वाधिक विकसित व्यवस्था गिनी जाती थी जिसमें भूमि को ऊसर छोड़ने एवं फसलों की अदला बदली की दोनों विधि को संयुक्त रूप से काम में लिया जाता था । इस व्यवस्था में गाँव की सम्पूर्ण भूमि को तीन हिस्सों में विभाजित कर दिया जाता था जिसे तकनीकी रूप से "फिल्ड" कह कर पुकारा जाता था । प्रत्येक खेत में अदला-बदली करके तीन फसलें उगाही जाती थीं जो कि निम्न हैं:-

2.3.3. फिल्ड-व्यवस्था

वर्ष	**फिल्ड** (अ)	**फिल्ड** (ब)	**फिल्ड** (स)
प्रथम वर्ष	गेहूँ	जव अथवा जई	ऊसर
द्वितीय वर्ष	जव अथवा जई	ऊसर	गेहूँ
तृतीय वर्ष	ऊसर	गेहूँ	जव अथवा जई

यह व्यवस्था गहन कृषि का एक स्वरूप थी । कृषक निरन्तर जोती जाने वाली भूमि के स्थान पर नई ऊसर भूमि खेती के उपयोग में नहीं ले सकते थे "थ्री फिल्ड व्यवस्था" हानिकारक थी क्योंकि इसमें भूमि का एक तिहाई भाग हर समय व्यर्थ पड़ा रहता था । इस पर कोई फसल नहीं उगाही जाती थी । अत: यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से किसान को यह स्थायी हानि थी ।

2.4. अठारहवीं शती में कृषि में प्रगति

अठारहवीं शती में कृषि ने प्रगति की ओर अग्रसर करना प्रारम्भ किया । इसके परिणामस्वरूप खेती की पैदावार में बढ़ोतरी हुई । इंग्लैण्ड में प्रति एकड़ गेहूँ के उत्पादन में सोलहवीं एवं अठारहवीं शती के मध्य वृद्धि हुई । सोलहवीं शती में प्रति एकड़ उपज 16 बुशेल (एक प्रकार का माप) से बढ़कर अठारहवीं शती में 2.-22 बुशेल के लगभग हो गई ।

ई0 जे0 हाबूसबाम की मान्यता है कि 1750 एवं 1830 के मध्य कृषि की प्रति एकड़ उपज एवं उत्पादकता में वृद्धि तकनीकी आविष्कारों के कारण नहीं हुई थी बल्कि खेती योग्य भूमि में वृद्धि, बड़े-बड़े खेतों की क्षमता में विकास, फसलों में परिवर्तन एवं फसलों की अदला बदली के तेजी से विस्तार के कारण सम्भव हुई ।

2.4.1 हरी घासों एवं सर्द ऋतु की जडीं की खोज:

इंग्लैण्ड एवं नीदरलैण्ड प्रथम देश थे जहां खेती के नवीन तरीके विकसित किए गए । इन नवीन तरीकों को विकसित करने का मुख्य उद्देश्य ऊसर भूमि की सीमा में कमी करना था । हरी-घासों (Green Grass) एवं सर्द ऋतु की जड़ों (roots) के आविष्कार ने इस कार्य को सम्भव बना दिया । हरी-घासों की यह विशेषता थी कि ये अपना भोजन अथवा पोष्टिकता सूर्य के प्रकाश एवं हवा से प्राप्त करती थीं न कि जमीन से । इसकी द्वितीय विशेषता यह थी कि इस घास के साथ-साथ भूमि पर फसल उगाई जा सकती थी । इससे भूमि के उपजाऊपन में सुधार होता रहता था । इसमें तिनपतिया घास (Clover), ल्यूसरने (एक प्रकार की घास) एवं राई-घास आती है ।

सर्द ऋतु की जड़ों की खोज ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिनमें शलजम (Turnip), शलजम (Swedes) एवं चुकन्दर की जड़ (beet roots/mangolds) सम्मिलित है । इसे जानवरों के चारे एवं अनचाही घास की सफाई के उपयोग में भी लिया जाता था इसके विस्तार ने पशु पालन के क्षेत्र में एक क्रांति ला दीं । अब पशुओं के लिए सर्दियों में चारा उपलब्ध होने लगा । परिणामत: मांस एवं खाद की आपूर्ति में तीव्र गति से वृद्धि हुई । खाद की आपूर्ति ने खेती योग्य भूमि की प्रति एकड़ पैदावार में बढ़ोतरी की ।

नई फसलों की खोज ने भूमि को ऊसर छोड़ने की विधि को व्यर्थ प्रमाणित कर दिया । अब पुरानी "थ्री फिल्ड व्यवस्था" का स्थान नयी "चार फसल की अदला-बदली" (yours course rotation) ने ले लिया- उदाहरणार्थ- गेहूं, तिनपतिया घास, जब अथवा जई एवं शलजम । बाद में आठ या नौ फसलों की अदला-बदली की पद्धति भी इसी सिद्धान्त पर विकसित की गई ।

2.4.2 भूमि की घेराबंदी:

कृषि सुधारों की शुरूआत सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुई । वहाँ पर इन सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । इस आवश्यकता को वहाँ की सामाजिक शक्तियों ने और अधिक बढ़ा दिया । वहाँ के भू-स्वामी व्यक्तिगत खेती में विश्वास करते थे । वे नहीं चाहते थे कि पारम्परिक तरीके से खेती की जाए । वहाँ के भूस्वामियों को परिवर्तित हो रही परिस्थितियाँ पुराने खेती के तरीकों को बदलने के लिए विवश कर रही थीं । व्यापार के विस्तार ने उनको प्रभावित करना प्रारम्भ किया । परिणामत: भूमि धीरे-धीरे किसानों के हाथों से निकल कर भूस्वामियों के हाथों में केन्द्रित होने लगी ।

सोलहवीं सदी में भूमि की घेराबंदी मूलत: व्यापारिक भावना से प्रभावित थी । अनाज की बनिस्पत ऊन अत्यन्त लाभकारी वस्तु बन गई । परिणामत: भूस्वामियों ने अपनी भूमि पर भेड़ पालन प्रारम्भ कर दिया ।

भूमि घेराबंदी से किसान सबसे अधिक प्रभावित हुए। उन्हे भूमि से निष्कासित कर दिया गया । सोलहवीं से अठारहवीं शती के दौरान किसान भूमिहीन खेत मजदूरों में परिवर्तित हो गए । अठारहवीं सदी के ग्रामीण इंग्लैण्ड का नक्शा ही बदल गया । सार्वजनिक खेती का स्थान बड़े-बड़े व्यक्तिगत फार्मों ने ले लिया एवं इनमें पूंजीवादी टिनेन्ट फार्मरस के द्वारा खेती की जाने लगी ।

द्वितीय यह कि कृषि सुधारों की सफलता की प्रगति भूमि की घेराबंदी (enclosures) पर कमोबेश निर्भर करती थी । न केवल अठारहवीं बल्कि उन्नीसवीं शती के सुधारों के लिए भी भूमि की घेरा-बंदी अत्यावश्यक थी । बल्कि अगर यह कहा जाए कि पश्चातवर्ती समय के सुधारों के लिए घेराबंदी की अधिक आवश्यकता थी तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । खेती में मशीनों के प्रयोग, ड्रेनेज की नई विधि एवं कृत्रिम खाद के उपयोग के लिए बड़े-बड़े खेतों की आवश्यकता थी । घेराबंदी का अर्थ होता है सार्वजनिक या खुले खेतों का व्यक्तिगत भूमि-इकाईयों में पुन: संयोजन । वैसे तो सोलहवीं शती से ही घेराबंदी की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी लेकिन 1760 के पश्चात् पार्लियामेंट एक्टों के द्वारा तीव्रता से भूमि की व्यवस्थित घेराबंदी करनी शुरू कर दी । 1760 एवं 1830 के मध्य इंग्लैण्ड की भूमि का एक चौथाई से लेकर आधे भाग तक का घेराबंदीकरण हो गया । घेराबंदी ने व्यापारिक प्रवृत्ति के उन किसानों (farmers) को अपने पुरातन पंथी पड़ौसियों से स्वतन्त्र बना दिया । लेकिन एक बात नितान्त सत्य है कि घेराबंदी एवं कृषि सुधारों ने साथ-साथ यात्रा की ।

2.5 कृषि सुधारों के प्रभाव:

अठारहवीं सदी के कृषि सुधारों का अगर लेखा-जोखा किया जाये तो यह पता चलता है कि इसके बहुत व्यापक प्रभाव पड़े । एक तरफ तो पारस्परिक ग्रामीण समाज को विनष्ट करके गरीबों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई लेकिन दूसरी तरफ भूस्वामियों एवं किसानों (farmers) को अत्यधिक लाभ हुऐ । इन कृषि सुधारों से उनकी कई समस्याओं का हल इन्हें मिल गया । पशुओं के भोजन अर्थात् चारे की आपूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ सर्दियों के मौसम में जानवरों को मारने की भी अब आवश्यकता नहीं रही । भेड़ों एवं जानवरों के लिए हरे भरे विशाल चरागाह के कारण उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई । खेती में काम आने वाले जानवर भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होने लगे । जानवरों की संख्या में वृद्धि के कारण खाद बड़ी मात्रा में आसानी से मिलने लगा । परिणामत: प्रति एकड़ खाद्य अनाजों की उपज में वृद्धि हुई । यद्यपि खाद्यान्नों को उगाहने के लिए भूमि की मात्रा में कमी आई लेकिन खाद की बड़ी मात्रा में उपलब्धता के कारण प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि हुई । इसके साथ-साथ ही मनुष्यों को मांस आसानी से बड़ी मात्रा में मिलने लगा ।

उपर्युक्त वर्णन से यह बात उजागर होती है कि यह व्यवस्था पूर्व व्यवस्था से विकसित थी एवं इससे कृषि पर निर्भर लोगों को अत्यधिक लाभ पहुँचा । लेकिन यह व्यवस्था सिर्फ इंग्लैण्ड एवं स्कॉटलैण्ड तक ही सीमित रही । इस समय की कृषि प्रगति के लिए कई लोग उत्तरदायी हैं जिनमें जैथरों टुल, विसकाउण्ट आउनशैन्ड, राबर्ट बेकवैल एवं आर्थर यंग आदि प्रमुख हैं । टुल ने नाली से बीज की बुवाई (drill sowing) हल की जुतवाई एवं मशीन से खुदाई

का आविष्कार किया । टाउन्शैन्ड ने सर्द ॠतु की जड़ों की खोज की एवं चार फसलों की अदला-बदली की विधि में भूमि को परती छोड़ने के स्थान पर शलजम एवं तिनपतिया घास को उगाहना प्रारम्भ किया । जबकि बेकवैल ने पशुपालन की वैज्ञानिक विधि को खोज निकाला । इन खोजों ने यूरोपीय देशों की कृषि पद्धति को कम प्रभावित किया । फ्रांस एवं जर्मनी में अभी भी पुरानी पद्धतियाँ प्रचलन में थीं । सिर्फ पूर्वी जर्मनी के जुंकर अभिजात वर्ग ने कृषि सुधारों में रुचि ली ।

2.6 1830 एवं 1870 के मध्य कृषि-विस्तार एवं कृषि-सुधारों में प्रगति

कृषि के क्षेत्र में प्रगति का यह कम उन्नीसवीं सदी में अबाध गति से चलता रहा । हाबूसबाम की मान्यता है कि 1830 से पूर्व औद्योगिक क्रांति एवं विज्ञान ने कृषि क्षेत्र को कम प्रभावित किया था । कृषि में विज्ञान की शुरूआत 1838 ई0 में "रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी" एवं 1843 में "रोथाम्स्टेय एक्सपेरिमेन्टल स्टेशन की स्थापना से होती है । इसके पश्चात् प्रगति अभूतपूर्व रूप से तीव्र थी । यही कारण है कि 1830 का वर्ष एक विभाजन रेखा के रूप में माना जाता है । इसका सम्पूर्ण श्रेय रेलों के आगमन को नहीं जाना जाता है । तीसरे दशक से कई महत्वपूर्ण तत्वों ने कृषि को गहराई से प्रभावित किया । परिणामत: अगले चार दशकों में कृषि में अभूतपूर्व क्रांति के कारण कृषि का असीमित विस्तार हुआ । इस समय के कृषि-विस्तार एवं प्रगति को समझने के लिए कृषि के निरन्तर बढ़ते हुए व्यापारिक चरित्र, ड्रेनेज व्यवस्था में सुधार, नली द्वारा बुवाई में सुधार, कृषि मशीनों का आविष्कार, कृत्रिम खाद की खोज एवं पूंजी निवेश की इच्छा शक्ति में बढ़ोत्तरी आदि तत्वों का समझना अत्यावश्यक है ।

बाजार की गतिशीलता एक ऐसा महत्वपूर्ण कारण था जिसने कृषि की काया को पलटने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इन चार दशकों के दौरान जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि ने कृषि उत्पादों की मांग को गहराई से प्रभावित किया । उपभोक्ताओं की वृद्धि के साथ-साथ मांग में तेजी से वृद्धि आई । विशेषत: शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण शहरी जनसंख्या में बढ़ोत्तरी हुई । ग्रेट ब्रिटेन एवं पश्चिमी यूरोप (फ्रांस को छोड़कर) की कुल जनसंख्या में क्रमश: एक तिहाई एवं एक चौथाई की बढ़त आई । इसी प्रकार इंग्लैण्ड एवं वैल्स की शहरी जनसंख्या 45 से 55 प्रतिशत एवं फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन एवं स्विटरजरलैण्ड की 30 प्रतिशत के लगभग आबादी बढ़ गई ।

इस बढ़ी हुई मांग का सामना यूरोपीय भू-स्वामियों एवं किसानों ने कई तरह से किया । कृषि उत्पादनों की आपूर्ति में बढोतरी खेती के विस्तार एवं बंजर भूमि पर खेती के द्वारा की गई । दक्षिणी रूस, रूमानिया एवं हंगरी के मैदानों में खेती की जाने लगी । इन प्रयासों के अतिरिक्त जिसने सर्वाधिक भूमिका निभाई वह थी जोती जा रही भूमि की प्रति एकड़ उत्पादकता में वृद्धि । प्रति एकड़ उत्पादकता को बढ़ाने में कई तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया के कारण खाद्यान मूल्यों में तेजी आई एवं परिणामत: भूस्वामियों की आय कई गुना बढ़ गई । इस बढ़ी हुई आय ने न केवल कृषि-सुधारों के लिए उनकी इच्छा शक्ति को प्रोत्साहित किया बल्कि

अपनी योजनाओं को कार्य रूप देने के लिए आवश्यक पूंजी का निर्माण भी किया । इंग्लैण्ड के समान यूरोप के देशों, उदाहरणार्थ-एलबे के पूर्व जर्मनी, डेनमार्क, हंगरी एवं इटली में भी भूस्वामियों ने कृषि सुधार का झण्डा अपने हाथ में लिया । इन्होंने अनाज एवं ऊन का उत्पादन किया जिसे बाजार में बेचा ।

किसानों से खेती में सुधारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उनके पास अत्यधिक कम भूमि हुआ करती थी । दूसरा उनके पास धन की इतनी अधिक बचत नहीं होती थी कि वे इस अतिरिक्त धन को कृषि सुधारों में लगा दें । दूसरी तरफ ऋण लेने की आदत एवं अधिकतम ब्याज देने के कारण उनकी क्षमता भी नहीं रह गई थी । इसलिए यह स्पष्ट है कि कृषि की पद्धतियों में सुधार बड़े खेतों पर अधिक सफलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से हुआ । जैसाकि मैंने पूर्व मैं बताया था कि घेराबंदी एवं कृषि में सुधार एक दूसरे से जुड़े सवाल थे । इंग्लैण्ड की अधिकांश खुली हुई भूमि की घेराबंदी 1830 तक हो गई थी एवं 1870 ई0 तक ग्रामीण मानचित्र के पुनर्रेखांकन का कार्य वास्तव में लगभग सम्पूर्ण हो चुका था ।

अगला कदम ड्रेनेज (Drainage) में सुधारों से सम्बन्धित है । भूमि से अतिरिक्त पानी का बाहर निकालना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा इससे फसल का विनाश हो जाएगा । यह बात किसान के लिए शोचनीय थी इसलिए वह हमेशा इसके लिए सजग रहता था । मध्यकालीन समय में ढलावदार पहाड़ी मैदानों पर खेती की जाती थी जिससे काफी सीमा तक यह समस्या हल हो जाती थी । ढलान पर हल से बनी लकीर खुली नाली का कार्य करती थी जिसके द्वारा अतिरिक्त पानी को बाहर निकालने में सहायता मिलती थी । अठारहवीं सदी में कैप्टन व्लिग ने बन्द खाईयों के द्वारा पानी बाहर निकालने की विधि की खोज की लेकिन बाद में स्मिथ डीनस्टोन की खोज ने इस पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया । इस पद्धति में जली मिट्टी से बनी बेलनाकार (cylindrical) टाईल्स की सहायता से पानी बाहर निकालने का काम सम्पन्न किया जाता है । इसकी खोज 1843 ई0 में हुई । इसने अब तक के सभी तरीकों को भुला दिया । इस नयी पद्धति को सभी देशों में अपनाया गया एवं परिणामत: मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार हुआ ।

कृत्रिम खाद का खेती में प्रयोग एक ऐसा कदम था जिसने न केवल भूमि की उर्वरता को बढ़ाया बल्कि कृषि में रसायन शास्त्र के प्रयोग के लिए दरवाजे खोल दिए । रसायन शास्त्र के प्रयोग ने भूमि की वार्षिक उत्पादन क्षमता को बढ़ा दिया । एक जर्मन रसायनविद की शोध ने कृत्रिम खाद के बनाने के कार्य को सम्भव बना दिया । लीबिग ने सन् 1840 ई0 में "आरगेनिक केमिस्ट्री इन इट्स रिलेशन टू एग्रीकल्चर एण्ड प्लान्ट फिजियोंलाजी" नामक पुस्तक प्रकाशित की । इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व किसान हड्डियों का बुरादा, पेरुवियन मछली की खाद एवं नवीन सुधरी हुई कृत्रिम खाद प्रयोग में लाते थे । लीबिग ने पौधे के जीवन के तीन मुख्य हिस्से तीन द्रव्य पौटाश, फासफोरस एवं नाइट्रोजन की खोज की । इस शोध की सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि इसने रासायनिक खाद का निर्माण सम्भव बना दिया । इसके साथ ही साथ इन प्रयासों एवं खोजों को भी प्रभावित किया कि किस प्रकार इसकी समुचित आपूर्ति की जाये । नाइट्रेट्स के आयात में बढ़ोत्तरी हुई एवं 1852 ई0 में हर्ज पर्वत श्रृंखलाओं में नमक भण्डारों (salt deposits) का पता चला ।

कृत्रिम खाद के प्रयोग ने कृषि को व्यापक रूप से प्रभावित किया । इसके प्रयोग ने किसान को प्राकृतिक खाद से मुक्त कर दिया । पशुपालन कृषि कर्म का अब एक आवश्यक अंग नहीं रह गया । पशुपालन मुख्यत: खाद की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था । कृत्रिम खाद की खोज ने इसकी उपयोगिता को कम कर दिया । इस खोज का सर्वाधिक लाभ भूमि की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के रूप में हमारे सामने आया। रासायनिक खाद के प्रयोग से भूमि की प्रति एकड़ उपज में बढोतरी हुई ।

खोजों का सिलसिला इसी तरह चलता रहा । 1870 ई0 में पेरुवियन मछली की खाद (guano) के समाप्त होने के आसार नजर आने लगे इससे वैकल्पिक खादों के खोज की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की जाने लगी । श्रमिकों की कमी एवं ऊँची मजदूरी की दरों ने मशीनों की आवश्यकता को और अधिक तेजी से बढ़ा दिया । वैसे तो खेती में मशीनों का प्रयोग बहुत लम्बे समय से होता आ रहा था लेकिन उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में अभूतपूर्व खोजों ने कृषि की काया पलट दी । औद्योगिक क्रांति ने मशीनीकरण की प्रक्रिया में तेजी ला दी थी । इसने कृषि को गहराई से प्रभावित किया । स्काटवासी जैम्स वाट के स्टीम इंजन से बहुत प्रभावित थे । उन्होंने हल चलाने के लिए स्टीम इंजन का प्रयोग किया । खेती में फसल कटाई में सर्वाधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है । इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम बुवाई-मशीन की खोज हुई थी लेकिन अगले पचास सालों तक इसका कोई असर नहीं रहा । 1830 ई0 में ओबे हस्सी नामक एक अमरीकी व्यक्ति ने अश्व चालित बुवाई मशीन का आविष्कार किया । 1838 ई0 में मेककोरमिक ने इसमें सुधार किया एवं अपने नाम से इसकी रजिस्ट्री करवा ली । 1848 ई0 में उसने शिकागों में एक फैक्ट्री स्थापित कर ली एवं बड़ी संख्या में मशीनों का उत्पादन शुरू कर दिया । 1856 में एक चाकू लगी मशीन अत्यधिक प्रचलन में थी जिससे घास काटा जाता था । इसी तरह कृषि कार्यो के दूसरे क्षेत्रों में नये-नये औजार विकसित होने लगे । 1784 ई0 में अनाज को भूसे से अलग करने की मशीन बनाई गई जो कि अश्व शक्ति से चलती थी । लेकिन 1842 ई0 में रेन्शन ने स्टीम इंजिन का प्रयोग करके रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी, इंग्लैंड से पारितोषिक प्राप्त किया । इसी प्रकार मशीनों की खोज एवं खेती में उनके प्रयोग ने कृषि विस्तार में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

फ्रांस में कृषि का मशीनीकरण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में होता है । उस समय में फ्रांस की जनसंख्या में वृद्धि होती है । कृषि फार्मों के आकार बड़े हो जाते हैं एवं फार्मरस आधुनिक मशीनों एवं कृत्रिम खाद के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं । उन्होंने प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की एवं काफी धन अर्जित करके अपने राजनैतिक एवं सामाजिक प्रभाव को बढ़ाया ।

उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में, यहां तक कि उत्तरी फ्रांस में जहां कि कृषि काफी विकसित थी मशीन के नाम पर केवल अश्व चालित अनाज को भूसे से पृथक् करने की मशीन प्रचलन में थी । यह मशीन भी इसलिए प्रचलन में थी क्योंकि इस क्षेत्र में औद्योगिक प्रगति ने अपने कदम रखने प्रारम्भ कर दिये थे इसलिए श्रमिकों की अत्यन्त कमी थी । सदी के अन्त में मशीनीकरण की प्रकिया दक्षिण में पहुँची एवं शीघ्रता से इसका फैलाव होने लगा ।

इस श्रम बचन करने वाली मशीनों के आगमन से भूमि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई । प्रति एकड़ उपज एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई । मशीनों के प्रयोग ने खेती से सम्बन्धित कार्यो को कम खर्चीला बना दिया ।

यूरोप में कृषि का विकास इंग्लैंड से नितान्त भिन्न था । फ्रांस में किसानों ने भूस्वामियों को भूमि से वंचित किया । 1789 ई0 की फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप दो-तिहाई किसान भूमि के मालिक हो गए । बेल्जियम का विकास फ्रांस के समतुल्य था । जर्मनी दो हिस्सों में विभाजित था । पूर्वी जर्मनी का ग्रामीण समाज इंग्लैण्ड के समान था जबकि पश्चिमी जर्मनी फ्रांस के समान था । जर्मनी में किसानों की विमुक्ति का सिलसिला 1807, 1811 एवं 1816 की राजाओं द्वारा प्रारंभ होता है एवं छठे दशक में इसमें तेजी आती है । रूस के किसानों की विमुक्ति अलैक्जेंण्डर द्वितीय की 1861 की राजाज्ञा द्वारा होती है । इन सब परिस्थितियों ने कृषि-विकास में योगदान दिया ।

कृषि औजारों में सुधार, मशीनों की खोज एवं खेती में उनके प्रयोग एवं रासायनिक खाद के उपयोग के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी । हरबर्ट हीटन लिखते हैं कि ब्रिटिश ड्रेनेज योजनाएं महंगी थीं । इस पर प्रति एकड़ लगभग चार पाउन्ड खर्च होता था । इसी तरह बेकार पड़ी हुई भूमि को उपजाऊ बनाने में भी अत्यधिक खर्चा होता था । प्रश्न यह उठता है कि इतनी बड़ी मात्रा में पूंजी कहां से आती ? किसान इस स्थिति में नहीं होता था कि धन बचत करके कृषि सुधार में लगा सके । सामान्यत: ड्रेनेज एवं अन्य कार्यो के लिए पूंजी-निवेश का उत्तरदायित्व भूस्वामी का ही था । बड़े भूस्वामी अपनी भूमि पर बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश करता था जबकि छोटा थोड़ी मात्रा में । इंग्लैण्ड के कृषि क्षेत्र में इन तत्वों के मिलन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । बड़े भू-स्वामी ने बड़ी योजनाओं में अपनी पूंजी लगाई जबकि छोटे टिनेन्ट फार्मर (किरायेदार किसान) ने औजारों में धन लगाया । लेकिन दोनों की समान भागीदारी ने इंग्लैण्ड की कृषि क्रांति को एक नया मोड़ दिया एवं सम्पूर्ण महाद्वीप में उसे अग्रणी स्थान दिलाया । कहने का तात्पर्य यह है कि इंग्लैण्ड ने कृषि के क्षेत्र में महाद्वीप के अन्य देशों का मार्ग निर्देश किया ।

भू-स्वामियों का हित पूंजी निवेश में इसलिए अधिक था क्योंकि इसके द्वारा वे बढ़े हुऐ किराये से अपनी आय को बढ़ा सकते थे । लेकिन दूसरी तरफ किरायेदार किसान भी नए आविष्कारों के खेती में प्रयोग द्वारा अपने राजस्व को बढ़ा सकते थे । लेकिन इसके बावजूद भी पूंजी निवेश का भार उसके कन्धों पर जाता था जिसके पास आवश्यक पूंजी थी । यही कारण है कि इस सदी में इंग्लैण्ड में सर्वाधिक नवीन खोजें हुई ।

इससे ठीक विपरीत फ्रांस एवं बेल्जियम की नितान्त भिन्न स्थिति थी । यहाँ के भू-स्वामियों का चरित्र इंग्लैण्ड के भूस्वामियों से अलग था उनकी खेती में किसी भी प्रकार की रुचि नहीं थी । वे अपना भाग्य खेती से नहीं जोड़ना चाहते थे बल्कि राज दरबार से जुड़े रहकर ऊंचे ऊंचे ओहदे हासिल करके अपने सामाजिक स्तर को बनाए रखना चाहते थे । परिणामस्वरूप वे लगातार अपनी जमीन बेचते जा रहे थे । आर्थर बिरनी ने इस स्थिति को अत्यन्त दिलचस्प तरीके से व्याख्यायित किया है । उन्होंने लिखा है कि - "भूस्वामी द्वारा किसान को निष्कासित

करने के स्थान पर, वह किसान था जिसने भू-स्वामी को भूमि से वंचित कर दिया था । " कहने का तात्पर्य है कि भू-स्वामियों की अरुचि पूंजी-निवेश में एक बाधा थी ।

हरबर्ट हीटन का मानना है कि इंग्लैण्ड में कोई ऐसी वित्तीय संस्था विकसित नहीं हुई थी जो कि विशेषत: ग्रामीण कर्जे दे सके । महाद्वीप में प्रशिया एक ऐसा राज्य था जहां "लैन्डस्वाफटन" नामक संस्था अपने भू-स्वामी सदस्यों को ऋण दिया करती थी । वे बाण्ड की बिक्री के द्वारा धन इकट्ठा करते थे एवं बहुत ही कम ब्याज पर ऋण प्राप्त करते थे । जर्मनी में सहकारी समितियों की कृषि सुधारों के लिए वित्तीय सहायता अत्यन्त महत्वपूर्ण थी । फ्रेडरिक रफैसेन ने जर्मनी के राईन क्षेत्र में 1846-47 ई0 में बेकरी सरकारी समिति खोली । उसने इसकी सफलता से प्रोत्साहित होकर 1858 ई0 में एक ग्रामीण पारस्परिक सहायता समिति स्थापित की । इस सोसायटी का उद्देश्य था फार्मरस को कम या बिना ब्याज के त्रण देना । किसानों के लिए सबसे अच्छा अवसर था । हालांकि रेफीसेन की ग्रामीण बैंक विशेषत: जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् पश्चिमी जर्मनी में फैली ।

इन बैंकों के पास अपनी नियमित पूंजी नहीं थी, लेकिन सदस्यों की बचत से ऋण दिया जाता था । यह कर्जा सदस्य की व्यक्तिगत जमानत एवं उनकी भूमि पर दिया जाता था । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कर्ज लेने वाले की हैसियत अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर दिया जाता है ।

रैफीसेन ने 1876 ई0 में एक सेन्ट्रल बैंक का गठन किया जो कि एक शेयर होल्डिंग कम्पनी की तरह थी । यह एक प्रकार से स्थानीय बैंकों के लिए बैंकरों के समान थी । इसने थोड़े वर्षो के पश्चात् "डेलीटजेस्व" बैंक से समझौता भी किया जो कि शहरों में इसी प्रकार का कार्य करती थी । दोनों बैंक बैन्कर्स का तो कार्य करती ही थी लेकिन खाद, बीज, बैल एवं कच्चे माल आदि की थोक खरीद का कार्य करती थी । ये अपने सदस्यों के लिए इस प्रकार के सारे कार्य करती थीं जिससे कि उनको अधिक से अधिक लाभ पहुँच सके ।

1830 ई0 के पश्चात् दूसरे मध्य यूरोपीय राज्यों में भी इसका अनुसरण किया गया । ऐक जोइन्ट-स्टाक स्थापित किया गया । फ्रांस में 1852 ई0 में "क्रेडिट फोन्सीयर" राज्य द्वारा सहायता के आधार पर कायम किया गया । कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि सुधारों में पूंजी निवेश के लिए कई संस्थाएं स्थापित की गई जो इस क्षेत्र में अत्यन्त सक्रिय थीं । लेकिन छोटे जमीदारों एवं किसानों के लिए वास्तव में कोई भी संगठित संस्था नहीं थी जो कि उनको वित्तीय सहायता दे सके ।

यातायात के साधनों के विकास के कारण बाजारों का तेजी से विस्तार हुआ । इससे फार्मरस को बहुत अधिक लाभ पहुंचा । पहले उनकी आखों के सामने सिर्फ स्थानीय बाजार होता था लेकिन अब दूर-दराज के बाजार भी उसकी पहुँच की सीमा में आ गए । 1833 ई0 में मालगाडिया जानवरों, भेड़ों एवं सुअरों से लदी रहती थीं ।

1840 में स्टीम जहाज आयरलैण्ड से बड़ी मात्रा में मांस, अण्डे एवं जानवरों से लदे इंग्लैण्ड पहुंचते थे । 1330 ई0 में इंग्लैण्ड में रेलवे युग था । 1838 ई0 में रेलों का तेजी से विस्तार होता है । रेलवे के फैलाव के कारण कच्चे माल के स्रोतों एवं संभावित बाजारों तक पहुंच आसान हो गई । इससे कृषि क्षेत्र अत्यन्त लाभान्वित हुआ ।

जब रेलवे के आर्थिक लाभ उजागर होने लगे तक यूरोप के राज्यों ने इसकी तरफ विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया । राज्य ने अधिकांश मामलों में यातायात के साधन की योजनाएं बनाई एवं रेलवे के निर्माण के लिए अग्रिम धन दिया । इंग्लैण्ड के पद चिन्हों पर बेल्जियम चला । यहां के राज्य ने 1834 ई0 में रेलों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया । थोड़े ही समय में बेल्जियम में रेलों का जाल बिछा दिया गया । न केवल आन्तरिक क्षेत्रों को एक दूसरे से जोड़ा गया बल्कि पड़ौसी देशों के साथ भी सम्पर्क स्थापित कर लिया गया ।

फ्रांस ने भी बेल्जियम का अनुसरण किया एवं उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में रेलों के विकास में वहां तेजी आई । जर्मनी ने भी रेलों के विकास के लाभ का अनुभव किया । लेकिन जर्मनी अपनी राजनैतिक परिस्थितियों के कारण शीघ्र इसका लाभ उठा नहीं पाया । 1838 से 1847 ई0 के मध्य रेलों में तेजी से वृद्धि हुई । फिर धीरे-धीरे रेलों का जाल बिछता चला गया । कहने का तात्पर्य यह है कि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में रेलों का तीव्रता से विकास हुआ । परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की आपूर्ति तेजी से होने लगी एवं उसकी मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई । एक अनुमान के अनुसार इंग्लैण्ड में खाद्यान्नों का आयात 1870 ई0 में 1840 की तुलना में चार गुना बढ़ गया । इंग्लैण्ड को खाद्यान्नों की अधिकांश आपूर्ति यूरोप से होती थी । बाद में 1842 ई0 में अमेरिका के आ जाने से खाद्यान्नों के व्यापार में तेजी से विस्तार हुआ ।

अत: यह कहा जा सकता है कि 1830-70 के मध्य यूरोप में कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई । इस प्रगति की शुरूआत इंग्लैण्ड से हुई एवं धीरे-धीरे यूरोपीय देशों ने भी उसका अनुसरण करना प्रारंभ कर दिया । बाजारोन्मुखी उत्पादन ने कृषि को गतिशीलता प्रदान की । यूरोप में जंगलों के काटे जाने, ड्रेनेज, सिंचाई एवं नयी भूमि पर खेती करने आदि के प्रयासों के द्वारा खेती योग्य भूमि में विस्तार हुआ । रसायनशास्त्र एवं दूसरे विज्ञानों के उपयोग के द्वारा भूमि की उपज को बढ़ाया गया । हर दृष्टि से कृषि में - चहुंमुखी विकास हुआ एवं कृषि यूरोपीय समाज का मुख्य व्यवसाय बन गई ।

2.7 बोध-प्रश्न :-

1- क्या कारण है कि अठारहवीं सदी में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो जाने के उपरान्त भी कृषि क्षेत्र पिछड़ा रहा?

2- 1830-70 ई0 के मध्य यूरोप में कृषि विस्तार के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

3- 1830 ई0 के पूर्व की कृषि परिस्थितियों का वर्णन कीजिए ।

4- 1830 के पूर्व के समय में कृषि में सुधारों में औद्योगिक क्रांति एवं विज्ञान का कम हाथ था जबकि इसके पश्चातवर्ती सुधारों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी । इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

5- '1830-70 ई0 के मध्य कृषि यूरोपीय समाज का मुख्य व्यवसाय बन गई ।'
व्याख्या कीजिए ।

6- बाजार की गतिशीलता 1830-70 के मध्य के कृषि विस्तार के लिए मूलतः उत्तरदायी है । व्याख्या कीजिए ।

7- निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए-

(अ) भूमि की घेराबंदी आन्दोलन ।

(ब) ड्रेनेज विधि में सुधार ।

(स) कृषि मशीनों की खोज ।

(द) प्राकृतिक एवं कृत्रिम खाद ।

(क) पूंजी निवेश ।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1- आर्थर बिरनी: एन इकोनोमिक हिस्ट्री आव यूरोप 1760-1939

2- आर्थर बिरनी: एन इकोनोमिक हिस्ट्री आव द ब्रिटिशआईसल्स

3- हरबर्ट हीटन : इकनामिक हिस्ट्री आव यूरोप

4- इ0 जे0 हौव्सबाम : इन्डस्ट्री एण्ड एम्पायर ।

5- द न्यू केम्बीज माडर्न हिस्ट्री, वोल्यूम 10, 1830-70

6- वाई0 एस0 ब्रेनर : ए शोर्ट हिस्ट्री आव इकनामिक प्रोग्रेस- ए कोर्स इन इकनामिक हिस्ट्री ।

7- हेरी हीरडर: यूरोप इन द नाईन्टिथ सैन्चुरी (अध्याय 5)

8- जी0 ई0 मिन्गे का लेख : द "एग्रीकल्चरल रिवोल्युशन" इन इंगलिश हिस्ट्री- ए रिकंशीड्रेशन (एग्रेरियन कन्डीशन्स इन माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, सं0 चार्ल्स के0 वार्नेर)

इकाई 3

पूर्वी समस्या एवं क्रीमिया का युद्ध

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पूर्वी समस्या

- 3.2.1 पूर्वी समस्या क्या थी?
- 3.2.2 समस्या का आधार
- 3.2.3 टर्की साम्राज्य के पतन के कारण
- 3.2.4 पूर्वी समस्या के प्रति प्रमुख यूरोपीय शक्तियों का दृष्टिकोण एवं निहित स्वार्थ
- 3.2.5 रूस की बल्कान प्रदेश में महत्वाकांक्षाएं
- 3.2.6 तुर्की साम्राज्य में इंग्लैण्ड की रूचि एवं स्वार्थ
- 3.2.7 तुर्की साम्राज्य में आस्ट्रिया के हित
- 3.2.8 तुर्की साम्राज्य में फ्रांस की रूचि
- 3.2.9 तुर्की साम्राज्य में जर्मनी की रूचि

3.3 रूस की विस्तारवादी नीति एवं पूर्वी समस्या

3.4 क्रीमिया युद्ध से पूर्ववर्ती कतिपय महत्वपूर्ण घटनाएं

- 3.4.1 कुजुक कैनार्डजी की संधि
- 2.4.2 जैसी की संधि
- 2.4.3 बुखारेस्ट की संधि
- 2.4.4 यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन
- 2.4.5 ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह
- 2.4.6 एड्रियानोपिल की संधि
- 2.4.7 मेहमत अली की महत्वाकांक्षा
- 2.4.8 अन्कीयर एकेल्सी की संधि
- 2.4.9 लन्दन कन्वेन्शन

3.5 क्रीमिया का युद्ध

- 2.5.1 क्रीमिया युद्ध के कारण
- 2.5.2 टर्की में बढ़ता रूसी प्रभाव
- 2.5.3 टर्की के बंटवारे के रूसी पेशकश
- 2.5.4 पवित्र स्थानों के संरक्षण का झगड़ा
- 2.5.6 ईसाई प्रजा पर संरक्षण की रूसी मांग
- 2.5.7 रूस द्वारा वैलेशिया व मोल्डेविया पर अधिकार

2.5.8 विएना नोट

2.5.9 टर्की द्वारा युद्ध घोषणा

2.5.10 साइनोप का कत्लेआम

3.5.10 इंग्लैण्ड तथा फ्रांस द्वारा संयुक्त चेतावनी

3.6 क्रीमिया युद्ध की घटनाएं

3.7 क्रीमिया युद्ध का अंत व पैरिस की संधि

3.8 क्रीमिया युद्ध तथा पैरिस संधि की समीक्षा

3.9 क्रीमिया युद्ध के प्रमुख राष्ट्रों पर प्रभाव

3.10 बोध प्रश्न

3.11 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको 19 वीं शताब्दी की यूरोपीय इतिहास की-एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या, पूर्वी समस्या के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देना है तत्संबंधी विविध पहलुओं का विश्लेषण करने के उपरान्त हम इस समस्या के एक महत्वपूर्ण सोपान क्रीमिया के युद्ध का विश्लेषणात्मक विवेचन करेंगे । इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी-

– पूर्वी समस्या क्या थी एवं विविध यूरोपीय शक्तियों के इसमें क्या हित व स्वार्थ अन्तनिर्हित थे?

– रूस की विस्तारवादी नीति ने पूर्वी समस्या को कैसे उलझा दिया?

– क्रीमिया के युद्ध की पूर्ववर्ती पूर्वी समस्या से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण घटना एंव उनका महत्व?

– क्रीमिया के युद्ध के कारण, घटनाएं, पैरिस की संधि एवं परिणामों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन?

3.1 प्रस्तावना

18 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से तुर्की साम्राज्य के पतन ने एक अत्यन्त गंभीर एवं जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को जन्म दिया जो आगे चलकर 19 वीं शताब्दी की यूरोपीय समस्याओं में शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में मुखरित हुई । यह समस्या क्या थी और किन-किन संदर्भों में यह यूरोप की कूटनीति के साथ जुड़ी थी, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सही-सही उतर दे पाना एक कठिन एवं दुसाध्य कार्य है । यदि इसे अति संक्षेप में परिभाषित करने का प्रयास किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि यह समस्या तुर्की साम्राज्य के क्रीमिया पतन, रूस की विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं, आस्ट्रिया द्वारा अपने आपको बचाने के अंतिम प्रयासों तथा इंग्लैण्ड द्वारा अपने उपनिवेशों की तरफ जाने वाले मार्गो को बंद करने की चेष्टाओं, सर्वस्लाववाद एवं सर्व-जर्मनवाद के मध्य निरन्तर बढ़ते हुए टकरावों का सम्मिलित परिणाम थी ।

3.2 पूर्वी समस्या

3.2.1 पूर्वी समस्या क्या थी ?

वस्तुतः यह समस्या प्रश्न तुर्की साम्राज्य से संबंधित था । यूरोप में तुर्की साम्राज्य के अत्यन्त ही दुर्बल हो जाने एवं विघटन तथा पतन की ओर अग्रसर हो जाने के कारण जो समस्याएं उत्पन्न हुई उन्हीं को पूर्वी प्रश्न या पूर्वी समस्या कहा गया । क्योंकि तुर्की साम्राज्य का यूरोपीय भाग यूरोपीय-महाद्वीप के पूर्व में स्थित था, इसलिए इस समस्या को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाने लगा । लगभग दो शताब्दियों तक यूरोप के राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क इस समस्या को सुलझाने में लगा रहा । तुर्की साम्राज्य के पतन से पड़ौसी राज्य अपने स्वार्थों के दंगल में उलझ गये । यूरोप के इस भू-भाग को बाल्कन प्रायद्वीप (Balkan Peninsula) भी कहते हैं । इसी कारण इस समस्या को बाल्कान समस्या भी कहा गया है । 19 वीं शताब्दी के आरंभ में यह प्रश्न इतना उलझा हुआ नहीं था किन्तु इसके अंत होते-होते यह प्रश्न काफी जटिल हो गया । लार्ड मार्ले के मतानुसार पूर्वी समस्या ने कई प्रकार के परस्पर विरोधी हितों, प्रतिद्वंदी जातियों और विरोधी धर्मो से संबंधित प्रश्नों को उभार दिया । एक कूटनीतिज्ञ की दृष्टि में पूर्वी समस्या गठिये की बीमारी के समान है जो कि टांग पकड़ती है तो कभी हाथ । सौभाग्य होगा यह तुम्हारे पेट में न घुस जाये । "इस समस्या की प्रकृति का विश्लेषण किया जाये तो इसके कुछ मूल पहलू दृष्टिगोचर होते हैं जो तुर्की साम्राज्य के विघटन, टर्की तथा उसकी ईसाई प्रजा में संबंध, बाल्कन प्रदेश की विभिन्न जातियों में राष्ट्रीय भावना तथा टर्की में विदेशी हस्तक्षेप आदि तथ्यों से संबंधित हैं ।

3.2.2 समस्या का आधार

मध्यकालीन युग में जब इस्लाम अपने विस्तार की चरम स्थिति में था तक तुर्की के शासकों ने पूर्वी यूरोप के बड़े भू-भाग पर कब्जा कर लिया, विशेषतः उस क्षेत्र पर जिसे बाल्कान कहते हैं । जिस समय तुर्की ने इस क्षेत्र पर कब्जा किया तब यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ था और इसमें बसने वाले अधिसंख्य लोग आर्थोडक्स चर्च को मानने वाले गरीब किसान थे । आरंभ में तुर्की सुलतानों का शासन बहुत उदार था । यही कारण था कि लगभग 200 वर्षो तक इस क्षेत्र में कोई विशेष समस्या उत्पन्न नहीं हुई और स्थानीय जनता एवं शासक वर्ग के सम्मिलित प्रयासों से इस क्षेत्र का चहुंमुखी विकास सम्पन्न हो सका । पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक इस साम्राज्य का निरन्तर विकास होता रहा । जिस समय वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था उस समय इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत बल्कान , एशिया माइनर, सीरिया, मेसोपोटामिया, मिश्र, अरब तथा अफ्रीका के कुछ देश सम्मिलित थे । परन्तु, अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध काल में इसका विकास रूक गया और यह महान् साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर होने लगे ।

3.2.3 टर्की साम्राज्य के पतन के कारण

समय के साथ-साथ जब विश्व भर में इस्लाम का पतन प्रारंभ हुआ तो कतिपय राजनीतिक कारणों से; जिनमें 1789 की फ्रांस की महान् राज्य क्रांति का मुख्य योगदान था तथा कुछ तुर्की के जागीरदार शासकों (जिन्हें पाशा कहा जाता था) के दमनकारी प्रयासों के विरोध में स्थानीय आर्थोडोक्स चर्च की अनुयायी ईसाई जातियों का विद्रोह करने लगीं । इतने विस्तृत साम्राज्य पर नियंत्रण रखने की क्षमता तुर्क सुल्तानों में नहीं थी । जब कभी दूर के प्रांत में विद्रोह हो जाता तो उसे दबाना कठिन हो जाता था । तुर्क सुल्तानों का शासन प्रबंध भी निकम्मा, अयोग्य व निर्दयतापूर्ण था । सुल्तान स्वयं ऐश्वर्य विलास-वैभव मय जीवन व्यतीत करते थे व शासन व्यवस्था पर कोई ध्यान न देते थे । परिणामत: शासन व्यवस्था जर्जरित व खोखली होती चली गई । इसका अपरोक्ष परिणाम यह निकला कि खोखली शासन व्यवस्था के कारण प्रजा की साम्राज्य के साथ कोई सहानुभूति न रही । यही नहीं टर्की के दूरस्थ प्रांतों के गवर्नरों ने स्वतंत्र होने के लिए विद्रोह कर दिये । अल्जियर्स तथा ट्यूनिस नाममात्र को ही टर्की के अधीन थे । मिश्र का मेहमतअली भी स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा में था । अल्बानिया में अली आफ जनीना भी अपनी शक्ति बढ़ा रहा था अर्थात् चहूँ ओर बगावतें व विद्रोह पनप रहे थे किन्तु इनका दमन करने के लिए तुर्की में अब वह सैन्य शक्ति विद्यमान नहीं थी जिस सैन्य शक्ति के कारण कभी यूरोप तुर्की का लौहा मानता था । अब तक वहाँ की सैन्य शक्ति इतनी अशक्त, जर्जरित व बोझिल हो चुकी थी कि इन विद्रोहों का कठोरता से दमन तो दूर रहा अब तो विदेशी हस्तक्षेप से अपने आपको सुरक्षित रख पाना भी टर्की के लिए कठिन हो गया था । टर्की के मुसलमान शासकों द्वारा बल्कान प्रदेश की ईसाई प्रजा पर किये जाने वाले अत्याचारों ने आग में घी का कार्य किया व वे सब भी टर्की के विरूद्ध हो गये । सन् 1789 में जब फ्रांस की क्रांति हुई तो इस क्षेत्र की ईसाई जातियाँ दो साम्राज्यों के अधीन थीं । पहली वे जो आस्ट्रिया के हैप्सवर्ग शासकों के अधीन थी, जैसे मग्यार, उत्तरी स्लाव, जिनमें चैक भी सम्मिलित थे, स्लौवेक, पोल तथा दक्षिणी स्लाव जिनमें सर्व, कीट तथा स्लाविन्स भी सम्मिलित थे । दूसरी ओर सन् 1789 में मुस्लिम तर्को के अधीन जातियाँ थी यथा-यूनानी, बुल्गारियावासी, सर्बियावासी, रूमानियावासी व अल्बानियावासी । यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि तुर्की शासन के अधीन रहने वाली ये जातियां आपस में काफी घुलमिल गई थी व हर स्तर पर तुर्की के विरूद्ध हो चुकी थीं ।

विभाजन एवं विघटन की प्रकिया में स्पेन व पौलेण्ड के विभाजन के पश्चात् अब तीसरा विभाजन टर्की का होने का था । परन्तु सैनिक व भौगोलिक कारणों से टर्की के विभाजन में विलम्ब हो रहा था । यूरोप के बड़े राष्ट्रों की रूचि अभी टर्की की ओर नहीं थी । टर्की का पड़ौसी राष्ट्र आस्ट्रिया-हंगरी पश्चिमी यूरोप की समस्याओं की ओर अधिक झुका हुआ था व बवेरिया पर अपना अधिकार जमाने व जर्मनी में अपना प्रभाव बढ़ाने में लगा हुआ था किन्तु उसने बाल्कन प्रदेशों की ओर ध्यान नहीं दिया तथा तुर्की संबंधी प्रश्नों पर रूस की हिमायत करता रहा । यद्यपि वह जानता था कि रूस उसका प्रतिद्वंदी है किन्तु अठारहवीं शताब्दी, में रूस एक बड़ी शक्ति के रूप में उदित हुआ । इस कारण तुर्की की अवनति का मार्ग प्रशस्त हुआ

। कारण यह था कि रूस भी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था और उसकी प्रतिद्वंदिता भी पश्चिमी राष्ट्रों से थी; इसलिए अपने इतिहास में पहली बार तुर्की, पोलैण्ड व स्वीडन के समान एक शक्तिशाली यूरोपीय राज्य की महत्वाकांक्षा के मार्ग में रोड़ा स्वरूप दिखाई देने लगा । इतिहासज्ञ कैटल्बी के मतानुसार- ' 'रूस के शासकों के हृदय में पश्चिमी यूरोप में प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की भारी महत्वाकांक्षाएं थी; किन्तु स्वभावत: स्वीडन, पौलेण्ड व तुर्की तीनों ही देश रूस की पश्चिमी महत्वाकांक्षाओं के स्वाभाविक शत्रु थे; 18 वीं शताब्दी, तक रूस की बराबर इन तीनों देशों से अनबन रही । स्वीडन की इच्छा के विरूद्ध रूस का वाल्टिक सागर में प्रवेश हो गया और सन् 1815 में रूस ने फिनलैण्ड पर अधिकार कर लिया ताकि वह वाल्टिक सागर की रक्षा कर सके । सन् 1772, 1773 एवं 1775 में अशक्त पोलैण्ड का विभाजन हो गया । इन विभाजनों के फलस्वरूप पोलैण्ड का कुछ भाग प्रशा को मिला, कुछ भाग आस्ट्रिया को मिला और कुछ भाग रूस को मिला । किन्तु तुर्की पर विशेष रूप से रूस की आँखें लगी हुई थीं । रूस चाहता था कि काला सागर और जलडमरूमध्य पर अधिकार हो जावे ताकि भूमध्यसागर का मार्ग इसके अधिकार में रहे ।

3.2.4 पूर्वी प्रश्न के प्रति प्रमुख यूरोपीय शक्तियों का दृष्टिकोण एवं निहित स्वार्थ

3.2.5 रूस की बल्कान प्रदेश में महत्वाकांक्षाएं

पूर्वी समस्या के प्रति रूस की विशेष रूचि थी । पीटर महान् (1682 से 1725 ई0) की यह निश्चित नीति थी कि रूस के साम्राज्य का विस्तार किया जाये । रूस की नीति के मुख्य दो उद्देश्य थे । प्रथम, टर्की के साम्राज्य को खण्डित कर दिया जाये और कुस्तुन्तुनिया पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया जाये । द्वितीय, यदि यह संभव न हो तो टर्की के सुल्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जाये ताकि टर्की रूस के प्रभाव में रहे और रूस के अनुसार कार्य करे । बाल्कन प्रदेश में रूस की अत्यधिक रूचि बनी रहने के कतिपय ठोस कारण थे जिनका उल्लेख करना अपरिहार्य है ।

रूस अपने व्यापार-वाणिज्य तथा जलशक्ति के प्रसार हेतु समुद्र तक पहुंचने का खुला मार्ग चाहता था । रूस के पास कोई ऐसा समुद्रतट नहीं था जो 12 माह उपयोग के लिए खुला रहता हो । रूस के अपने एकमात्र बन्दरगाह आर्चेगिल (Archangle) का प्रयोग वर्ष में 5 महीने हो सकता था बाकी महीनों में वहाँ का समुद्र बर्फ के रूप में जम जाता था । रूस काले सागर तथा उसके जलडमरूमध्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहता था ताकि भूमध्य सागर का मार्ग उसके लिए अधिकार में आ जाये । टर्की के साम्राज्य में ग्रीक आर्थोडक्स चर्च को मानने वालों की बहुतायत थी और उसके पवित्र स्थान भी टर्की के अधिकार में थे । रूस में भी इसी धर्म की प्रधानता थी और धार्मिक कारण से भी रूस की रूचि टर्की में थी । इसका यह भी दावा था कि वह उस तुर्की साम्राज्य का ऐतिहासिक उत्तराधिकारी है जो कभी रोम के साथ-साथ समूचे सभ्य संसार पर अधिपत्य रखता था । बाल्कन प्रदेश में रूस की रूचि का जातीय कारण भी था । रूस न केवल बाल्कन का पड़ौसी था वरन् रूस व बाल्कन प्रदेश दोनों के लोग स्लाब जाति के थे । जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति आदि के कारण भी वे परस्पर बंधे हुए थे ।

रूस के जार विश्व में ग्रीक आर्थोडोक्स चर्च का संरक्षक था और तुर्की के लगभग सारे ईसाई प्रजातंत्र ग्रीक चर्च के भक्त थे । जार चाहता था कि सेंट सोफिया भी ग्रीक चर्च के अधिकार में आ जाये और गौरवहत राजधानी को पुन: गौरवान्वित किया जा सके । जार यह भी चाहता था कि कुस्तुन्तुनिया की प्रतिष्ठा बड़े किन्तु उसका रूसीकरण हो जाने और तुर्की शहंशाह, चर्च के संरक्षक तथा पूर्वी यूरोपीय देशों के नरेशगण जार की अधीनता स्वीकार करे क्योंकि जार ही उनका वास्तविक हितेषी है । इन्हीं कारणों से पीटर महान् से लेकर सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध तक रूस की नीति तुर्की के प्रदेशों को हड़पने की ही रही जो कि पूर्वी समस्या का एक अहम् कारण थी ।

3.2.6 तुर्की साम्राज्य में इंग्लैण्ड की रूचि एवं स्वार्थ

रूस की नीति इंग्लैण्ड के हितों के विरूद्ध थी । इंग्लैण्ड टर्की में रूस के बढ़ते प्रभाव को रोकना चाहता था । उसे भय था कि टर्की पर रूस का साम्राज्य स्थापित हो जाने से इंग्लैण्ड का भारतीय साम्राज्य खतरे में पड़ जायेगा और भूमध्य सागर पर भी रूसी प्रभाव बढ़ जायेगा । इंग्लैण्ड व्यापारिक उद्देश्यों से भी टर्की में रूचि रखता था । टर्की पर किसी भी अन्य शक्ति का अधिकार हो जाने से उसके व्यापार को हानि की आशंका थी । भूमध्यसागर पर रूसी प्रभाव स्थापित हो जाने से इंग्लैण्ड को न केवल व्यापारिक बल्कि सैनिक दृष्टिकोण से भी हानि होती । यही कारण था कि इंग्लैण्ड टर्की साम्राज्य को हर स्थिति में बनाये रखना चाहता था ।

3.2.7 तुर्की साम्राज्य में आस्ट्रिया के हित

आस्ट्रिया चारों ओर से भूमि से घिरा हुआ था । अत: समुद्र-तट तक पहुँचने के लिए उसे मार्ग चाहिये था जो उसके टर्की के साम्राज्य में से ही प्राप्त हो सकता था । इसी पर उसका व्यापार निर्भर था । यदि आस्ट्रिया को इस ओर थोड़ा सा भी स्थान प्राप्त हो जाता तो उसे अपने साम्राज्य के विस्तार में आसानी रहती । आस्ट्रिया का अधिकांश व्यापार डैन्यूब नदी से होकर होता था । आस्ट्रिया नहीं चाहता था कि डैन्यूब नदी के मुहाने पर रूसी प्रभुत्व हो जाये । रूस की तरह आस्ट्रिया में भी स्लाब अधिक थे । अखिल स्लाव आन्दोलन रूसी सहायता व समर्थन से बाल्कन में जोर पकड़ रहा था । आस्ट्रिया को रूस का पड़ोसी होने से भय था कि आस्ट्रियन स्लाव जनता न भड़क उठे ।

3.2.8 तुर्की साम्राज्य फ्रांस की रूचि

तुर्की का पुराना मित्र होने के कारण फ्रांस को टर्की साम्राज्य में विशेष व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त थीं । फ्रांस और अधिक सुविधाएं पाना चाहता था । भूमध्यसागर पर अधिकार हो जाने से उसकी समस्या और भी सुलझ जाती । पूर्वी समस्या में फ्रांस की धार्मिक रूचि यह थी कि वह बहुत समय से वहां के रोमन कैथोलिक्स का संरक्षक था ।

3.2.9 तुर्की साम्राज्य में जर्मनी की रूचि

विलियम द्वितीय बर्लिन बगदाद रेलवे लाईन बनाकर अपने व्यापारिक एवं राजनैतिक हितों की पूर्ति करना चाहता था । कैसर विलियम की नीति टर्की के साम्राज्य को बनाये रखने की थी ।

3.3 रूस की विस्तारवादी नीति एवं पूर्वी समस्या

रूसी महत्वाकांक्षाएं एवं उसकी विस्तारवादी नीति कितनी सोची समझी हुई थी इसका अनुमान इस आधार पर लगाया जा सकता है कि उसकी हर गतिविधि भावी संकट का संकेत देती थी । पीटर महान् ने बाल्टिक सागर के साथ लगने वाले क्षेत्रों पर नियंत्रण कर लिया जिनमें रीगा भी था जहां एक नये महानगर सैंटपीटर्सबर्ग की स्थापना की गई । कैथेराइन द्वितीय ने 1772 से 1795 के मध्य पोलैण्ड पर कब्जा कर लिया । उसने सन् 1783 में क्रीमिया और फिर सन् 1794 में आडेसा पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रूसी विस्तारवादी नीति का मुख्य ध्येय भूमध्यसागर की ओर बढ़ना था । जब क्रीमिया के युद्ध में रूस का यह मार्ग इंग्लैण्ड व फ्रांस ने बंद कर दिया तो रूस ने गरम सागरों तक पहुंचने न के नये रास्ते पकड़ लिये । रूस काकेसस पर्वतों के रास्ते फारस की ओर एवं सिन्ध नदी की प्रयोग करने के लिए अफगानिस्तान की ओर अग्रसर हुआ व इस प्रकार बहुचर्चित पूर्वी समस्या से भारत भी जुड़ गया । क्रीमिया ओडेसा पर रूसी नियंत्रण व क्रीमिया की हार के बाद रूस का फारस, अफगानिस्तान व फंचूकिया की ओर से गरम सागरों तक पहुंचने के प्रयासों ने इंग्लैण्ड व रूस में टकराव पैदा कर दिया जो सन् 1854 के क्रीमिया के युद्ध से लेकर सन् 1907 ई0 तक यूरोप में गतिरोध पैदा करता रहा ।

रूस द्वारा तुर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया पर एवं बल्कान प्रदेश में अपना प्रभाव बढ़ाने के प्रयासों के परिणाम स्वरूप 1854 ई0 का क्रीमिया युद्ध व सन् 1877 के रूस-तुर्की युद्ध हुए । अफगानिस्तान की ओर अग्रसर होने से दो भारत-अफगानिस्तान युद्ध हुए । सुदूर पूर्व में प्रसार के फलस्वरूप पहले सन् 1894 में कोरियाई युद्ध तथा बाद में सन् 1904 में रूस जापान युद्ध हुए जिनके परिणाम स्वरूप इंग्लैण्ड जापान मैत्री हुई । उपर्युक्त स्थिति में उत्पन्न समस्या ही वास्तव में पूर्वी समस्या है । सन् 1840 की घटनाओं एवं विशेषकर क्रीमिया युद्ध विषयक घटनाचक्र से ठीक प्रकार से समझने के लिए यह अपरिहार्य है कि हम पहले इसके पूर्व की कतिपय महत्वपूर्ण घटनाओं पर दृष्टिपात करें ।

3.4 क्रीमिया युद्ध से पूर्ववर्ती कतिपय महत्वपूर्ण घटनाएं

3.4.1 कुजुक-कैनार्डजी की संधि (1774 ई0)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, विशेषकर कैथेराईन- के राज्यकाल में रूस की महत्वाकांक्षाएं पूर्ण होने लगीं । 1774 की कुजुक कैनार्डजी की संधि द्वारा रूस को कालेसागर के उत्तरी तट पर अधिक मिल गया तथा डान व नीपर नदी के मुहानों पर भी उसका नियंत्रण स्थापित हो गया । रूस को तुर्की की नदियों, काले सागर में और डेन्यूव नदी में व्यापारिक अधिकार प्राप्त हो गये । कुस्तुन्तुनिया में रूसी दूतावास की स्थापना की गई । रूस को तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाले ग्रीक ईसाईयों के संरक्षण का अधिकार दे दिया गया । वैलेशिया, मोल्डेबीया नामक डेन्यूब के उत्तर में स्थित रियासतों में रूस को कुछ ऐसे अस्पष्ट अधिकार प्राप्त हो गये जिनके आधार पर वह तुर्की साम्राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था ।

3.4.2 जेसी की संधि (1792 ई0)

रूस व आस्ट्रिया ने सम्मिलित रूप से टर्की पर आक्रमण कर दिया परन्तु 1791 में आस्ट्रिया को तुर्की युद्ध से हटना पड़ा क्योंकि उसकी सैनिक पराजय हुई, उसके अपने राज्य क्षेत्र में व्यापक असंतोष व्याप्त हो गया । प्रशा, ब्रिटेन व हालैण्ड में तिहरी संधि हो गई । अगले वर्ष ही रूस को मजबूरन जेसी (Jassy) की संधि करनी पड़ी क्योंकि उसकी स्वीडन के साथ लड़ाई छिड़ गई व पौलेण्ड में षड्यन्त्र रचे जाने लगे फिर भी कैथेराईन-II ने रूस के लिए किमिया विजय किया तथा रूस की सीमाएं नीस्टर तक विस्तृत हो गई ।

3.4.3 बुखारेस्ट की संधि (1812 ई0)

1912 में मास्को युद्ध से ठीक पहले अलैकजेण्डर ने तुर्की के साथ बुखारेस्ट की संधि कर ली । इस संधि द्वारा रूस को बेसेरेबिया प्राप्त हुआ और इस प्रकार रूस का राज्य तुर्की की अधीन रियासतों तक पहुंच गया था । 19 वीं शताब्दी में कुछ नई घटनाएं हुई जिनके कारण रूस व तुर्की के संबंध जटिल हो गये ।

3.4.4 यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन

नेपोलियन के साथ चलने वाले लम्बे युद्धों के पश्चात् यू0 के0 व आस्ट्रिया ने यह अनुभव किया कि रूस वास्तविक खतरा है और 1815 में तो रूस यूरोपीय शक्ति संतुलन के लिए एक चुनौती था । वियना कांग्रेस के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सम्पूर्ण यूरोप रूस के अधीन होने जा रहा है । 1815 में यू0 के0 ने आयोनियन द्वीपों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया । इससे यह निष्कर्ष निकलता था कि अब ब्रिटेन की अभिरूचि निकट पूर्व के मामलों में बढ़ रही है यद्यपि छोटे पिट के जमाने में इंग्लैण्ड को यह भान हो चला था कि रूस के बढ़ते हुए प्रभाव क्षेत्र के कारण उसके पूर्वी हित संकट में हैं । कैसलरी, कैनिंग, पामर्स्टन और बाल्कन में डिजराइली की नीति को सर्वप्रथम ट्रिपल-एलाईनस द्वारा मूर्तस्वरूप प्रदान किया गया । इस संधि का मूल ध्येय यही था कि रूसी मालू के बढ़ाव को रोका जावे और दूसरा उद्देश्य यह था कि तुर्की साम्राज्य की रक्षा की जाये, यद्यपि दूसरा उद्देश्य मुख्य उद्देश्य के अधीन था ।

3.4.5 ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह?

अब ऐसा अवसर था जब तुर्की पश्चिमी राष्ट्रों की छत्र छाया में और अपने श्रेष्ठ सुल्तानों सलीम तृतीय और मेहमूद द्वितीय के शासनकाल में पुनर्जीवन प्राप्त करता, किन्तु दुर्भायवश स्वयं तुर्की साम्राज्य में ईसाई बल्कान राष्ट्रों और सशक्त क्रांतिकारी प्रजा की ओर से विरोध प्रारंभ हो गया । अब यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष तुर्की की समस्या नये रूप में आई । क्या पुराने शत्रु के दमन से नये शत्रु को बल तो नहीं मिलेगा? यदि पश्चिमी राष्ट्र रूस के विरूद्ध कोई कार्यवाही करते, तो क्या उस कार्यवाही से तुर्की साम्राज्य का हित होता अथवा ईसाई रियासतों का हित होता अथवा महत्वाकांक्षी पाशाओं का हित होता? अब सभी पश्चिमी राष्ट्र यह सोच रहे थे कि उन्हें किस नीति का अनुसरण करना लाभकारी होगा । सारी 19 वीं शताब्दी पूर्वी प्रश्न इसी त्रिभुजाकार स्थिति के आसरे लटका रहा ।

क्रिमिया युद्ध की समाप्ति के बाद तक शताब्दी के सम्पूर्ण पूर्व भाग में ईसाई राज्यों ने पूर्वी प्रश्न में पर्याप्त भाग लिया । इस दिशा में मुख्य प्रयत्न सर्बिया, एवं ग्रीस में हुए व कुछ अप्रत्यक्ष प्रयत्न माण्टीनिग्रो में भी किये गये । ब्रिटेन व आस्ट्रिया ने 6 वर्षो तक ग्रीस के विप्लबी ईसाईयों को तुर्की के विरूद्ध कोई सक्रिय सहायता नहीं दी । ब्रिटेन व फ्रांस में जनमत तुर्की द्वारा ईसाईयों के क्रूर दमन से विक्षुब्ध था । रूस अकेला तुर्की में हस्तक्षेप नहीं कर बैठे इसलिए भी दोनों देशों ने 1827 में रूस के जार के साथ मिलकर तुर्की में हस्तक्षेप किया । यह भी महत्वपूर्ण है कि नैवेरिनो (Navarino) की लड़ाई के बाद वैलिंगटन ने कैनिंग की नीति को त्याग दिया और रूस को खुली छूट दे दी ।

3.4.6 एड्रियानोपिल की संधि (1829 ई0)

इसके उपरांत एड्रियानोपिल की संधि हुई जिसके अनुसार ग्रीस रूस की छत्रछाया में स्वतंत्र राष्ट्र होकर उदित हुआ तथा सर्बिया एवं अन्य रियासतें भी रूस के नियंत्रण में तुर्की के आधिपत्य से मुक्त हुई । इस संधि द्वारा जार को कुछ भू-भाग मिले साथ ही कुछ पहले से अधिक व्यापारिक सुविधाएं एवं राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त हुए । कुछ ऐसे प्रयत्न किये गये जिसके द्वारा ग्रीस राज्य को ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के सम्मिलित नियंत्रण में रखने का प्रयास किया गया और यह भी प्रयत्न किया गया कि ग्रीस को तीनों देश मिलकर पुनर्निर्माण के लिए का दें । टर्की ने काले सागर तथा डेन्यूब नदी में सभी तटस्थ राष्ट्रों के जहाजों के आवागमन की स्वतंत्रता स्वीकार की । डान्लीज व बास्फोरस में रूस के अधिकार स्थाई बना दिये गये ।

एड्रियानोपिल की संधि रूसी नीति की महत्वपूर्ण सफलता थी । इससे रूस को व्यापक अधिकार प्राप्त हुए और टर्की का विखण्डन शुरू हो गया । रूस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई क्योंकि उसने स्वतंत्र यूनान (ग्रीस) का अपने नेतृत्व में निर्माण करवाया ।

इंग्लैण्ड की नीति डांवाडोल हो गई तथा मैटेरनिख की प्रतिक्रियावादी की नीति को गहरा आघात लगा । इसके अतिरिक्त टर्की की निर्बलता का पता यूरोपीय शक्तियों को लग गया । यह भी प्रकट हो गया कि टर्की की समस्या यूरोप की एक महान् व जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है जिसका संबंध महाशक्तियों के परस्पर विरोधी हितों से है । टर्की साम्राज्य के विरोध में अन्य बाल्कन प्रजातियों को उससे भारी प्रोत्साहन मिला ।

3.4.7 मेहमतअली की महत्वाकांक्षा

यूनान के स्वतंत्रता संग्राम में टर्की के सुल्तान ने मिश्र के पाशा मेहमतअली से सहायता ली थी । इसकी एवज में उसे क्रीट द्वीप की गवर्नरी मिली परन्तु वह इससे संतुष्ट नहीं हुआ । वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था तथा सुल्तान की निर्बलता का फायदा उठाकर अपनी शक्ति का विस्तार चाहता था । 1831 में एक साधारण से बहाने पर मेहमत अली का पुत्र इब्राहिम फिलिस्तीन पर आक्रमण कर सका और दमिश्क पर अधिकार कर बैठा । तुर्की फौजों को हरा कर एशिया माईनर में पैठने लगा । इससे कुस्तुन्तुनिया को वास्तविक खतरा पैदा हो गया । 1832 में तुर्की के सुल्तान ने यूरोप की शक्तियों से सहायता की याचना की किन्तु रूस के

अतिरिक्त किसी ने उत्तर तक नहीं दिया । विवश होकर टर्की के सुल्तान ने रूस की सहायता स्वीकार की परन्तु जब पश्चिमी शक्तियों ने देखा कि रूसी जहाजी बेड़ा बास्पोरस (Bosporus) में लंगर डाले पड़ा है और रूसी सेना तुर्की के प्रदेशों में घुसती चली जा रही है तो वे चिन्तित हो उठे । इंग्लैण्ड, फ्रांस और आस्ट्रिया में तुर्की के सुल्तान को इस बात के लिए विवश कर दिया कि मेहमत अली को सिरिया देकर उसकी छुट्टी कर दी जाय ताकि रूसी सहायता की आवश्यकता ही नहीं रहे । विवशतः सुल्तान ने अप्रैल 1833 में मेहमत अली की मांग स्वीकार कर ली परन्तु रूस इस तरह धोखे में आने वाला नहीं था । उसने सुल्तान से अपनी सहायता का मूल्य वसूल किया ।

3.4.8 अन्कीयर स्कैलेसी की संधि (1833 ई0)

रूस व टर्की के मध्य जुलाई 1833 में अन्कीयर स्कैलसी की एक में प्रतिरक्षात्मक संधि पर हस्ताक्षर हुए। जिसकी मुख्य मदें निम्न थीं-

1- टर्की रूसी जहाजी बेड़े को काला सागर के जलडमरूमध्यों में से होकर रास्ता देगा ।

2- टर्की युद्ध के समय डांडेनेल्स (Dardenelles) को रूस के अतिरिक्त अन्य सब देशों के जहाजों के लिए बंद रखेगा । (दर्रे दानियाल)

इस संधि के परिणामस्वरूप काला सागर व कुस्तुन्तुनिया पर रूस का प्रभाव बढ़ गया । इस संधि ने कालासागर को एक प्रकार से रूसी झील बना दिया तथा तुर्की की विदेश नीति को रूसी नियंत्रण में कर दिया । 8 वर्ष के लिए की गई यह संधि रूस के जार की कूटनीतिक विजय थी । इससे इंग्लैण्ड व फ्रांस भयभीत हो गये ।

3.4.9 लन्दन कन्वेन्शन (1840-41 ई0)

1- तुर्की को सिरिया, क्रीट और अरब मिले और मेहमत अली को तुर्की के सुल्तान के आधिपत्य में मिश्र का आनुवांशिक पाशा मान लिया गया ।

2- डाडेने स या दर्रे दानियाल को युद्ध काल में सभी देशों के जंगी जहाजों के लिए बन्द कर दिया गया ।

इस संधि ने पूर्वी समस्या को कुछ समय के लिए शांत कर दिया । यह संधि पामर्स्टरन की महान् विजय थी । इसने मिश्र में फ्रांस की आशाओं पर पानी फेर दिया । अन्कियर स्केलेसी की संधि समाप्त हो गई ।

3.5 क्रीमिया का युद्ध (1854-56 ई0)

सन् 1854 ऐसे 1856 ई0 के मध्य काला सागर के उत्तर में स्थित क्रीमिया नामक प्रायद्वीप में एक भयानक युद्ध लड़ा गया जो इतिहास में क्रीमियन युद्ध के नाम से जाना जाता है । इस युद्ध में एक ओर रूस तथा दूसरी और टर्की, ब्रिटेन, फ्रांस एवं स्वार्डिनिया ने भाग लिया । यह युद्ध पूर्व की समस्या के उथल-पुथल भरे इतिहास का एक महत्वपूर्ण सोपान है । इस युद्ध ने 19 वीं शताब्दी की अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को भूमिका प्रदान की । इसी क्रीमियन के युद्ध ने 1815 की वियना कांग्रेस द्वारा स्थापित यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) की धज्जियां उड़ा दी । इतिहासकार कैटल्बी इस संबंध में अपना मत

व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि, लन्दन कन्वेन्शन के दस वर्ष बाद तक तुर्की के साम्राज्य में शांति रही । यहां तक कि यरूशलम (Jerusalem) के प्रतिद्वन्दी चर्चों में भी वैमनस्य शांत रहा किन्तु इसी समय फ्रैंच राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय ने बिना आवश्यकता के लैटिन सन्यासियों का पक्ष लेते हुए उनके अधिकार को वापस करने की मांग की । लैटिन चर्च के सन्यासियों का पक्ष लेकर वास्तव में नेपोलियन तृतीय विश्व व्यापी युद्ध की होली खेलना चाहता था ।

यद्यपि यह युद्ध पवित्र स्थानों (Holy Places) के नियंत्रण के मामूली से झगड़े से शुरू हुआ था तथापि बाद में इस युद्ध ने अति भयानक खूनी रूप धारण का लिया । सर राबर्ट मोरियर इस युद्ध को पूर्ण रूप से अनुपयोगी युद्ध कह कर जहाँ इसे एक महत्वहीन घटना के रूप में देखते हैं वहीं लार्ड क्रोमर ने इसे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना बताते हुए लिखा है कि यदि यह युद्ध नहीं होता और डिजरैली पूर्व की समस्या की ओर दूरदर्शितापूर्ण नीति न अपनाता तो बाल्कन राज्यों को स्वतंत्रता कभी भी न मिलती और रूस का कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार होता ।

3.5.1 क्रीमिया युद्ध के कारण

यह युद्ध क्यों हुआ तथा इसके क्या कारण थे? इस पर इतिहासकारों में मतभेद हैं । इंग्लैण्ड की तत्कालीन रानी विक्टोरिया के मतानुसार युद्ध का कारण रूसी जार निकोलस प्रथम की महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थपरता थी जबकि किंग्सलेक के अनुसार युद्ध का कारण फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय था । इतिहासज्ञ एल0 सी0 वी0 सीमेनव के अनुसार इस युद्ध का मुख्य कारण इंग्लैण्ड के उदारवाद तथा रूसी निरंकुशवाद के बीच बढ़ता हुआ संघर्ष था । कुछ अन्य विचारक ऐसा मानते हैं कि इंग्लैण्ड टर्की में बढ़ते हुए रूसी प्रभाव को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था । ए0 जे0 पी0 टेलर ने इस संबंध में अपना मत व्यक्त किया है कि निकोलस को एक आश्रित तुर्की की जरूरत थी क्योंकि केवल आश्रित तुर्की के द्वारा ही रूस की काला सागर के क्षेत्र में सुरक्षा हो सकती थी, नेपोलियन तृतीय को अपने पद को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध में सफलता प्राप्ति की आवश्यकता थी, इंग्लैण्ड को अपनी सामरिक सुरक्षा के लिए पूर्वी भूमध्यसागर में एक स्वतंत्र तुर्की की आवश्यकता थी वस्तुतः एक देश के दूसरे देश पर आक्रमण ने नहीं वरन् आपसी अविश्वास ने क्रीमिया के युद्ध को जन्म दिया । (ए0 जे0 पी0 टेलर, स्ट्रगल फार मास्ट्री इन यूरोप, पृ0 60) घटनाओं व तिथियों का आद्योपांत अध्ययन करने पर वास्तविकता के रूप में यह बात उभर कर सामने आती है कि यह युद्ध कई कारणों का संयुक्त परिणाम था ।

3.5.2 टर्की में बढता रूसी प्रभाव

युद्ध का मूल कारण इंग्लैण्ड एवं फ्रांस द्वारा टर्की में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को बर्दाश्त नहीं करना था । इससे यूरोप में शक्ति संतुलन के बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो गया था । इंग्लैण्ड एवं फ्रांस जैसी महाशक्तियां इस नवीन स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी ।

3.5.3 टर्की के बंटवारे की रूसी पेशकश

अपनी ब्रिटेन यात्रा के दौरान सन् 1844 ई0 में जार निकोलस प्रथम ने टर्की के विभाजन का प्रस्ताव ब्रिटिश प्रधानमंत्री एबरडीन के समक्ष रखा । सन् 1853 में जार ने सैन्ट पीटर्सवर्ग स्थित ब्रिटिश राजपूत सर हैमिल्टन सीपर से कहा कि तुर्की यूरोप का बीमार है; वह एक मरणासन्न रोगी है जो शीघ्र ही समाप्त होने जा रहा है । यह हम सभी के लिए दुर्भाग्यजनक बात होगी कि इस बीमार की सन्निकट मृत्यु से पूर्व ही उसके साम्राज्य का बंटवारा नहीं हुआ । इसलिए इंग्लैण्ड व रूस को चाहिए कि वे इसके साम्राज्य का परस्पर बंटवारा कर लें । यह सुझाव दिया गया कि टर्की के साम्राज्य का बंटवारा इस प्रकार हो कि रूस को कुस्तुन्तुनिया व दर्रे दानियाल (Dardenelles) का नियंत्रण मिल सके और बदले में इंग्लैण्ड को मिश्र, कीट मिल जाय परन्तु इंग्लैण्ड ने इस रूसी पेशकश को दृढ़तापूर्वक विनम्र भाषा में अस्वीकार कर दिया । जे0 ए0 आर0 मैरियट लिखते हैं कि इंग्लैण्ड ने न तो तुर्की के रोग का निदान स्वीकार किया और न रोग के उपचार की तजबीज को ही उचित ठहराया । सारांश में इंग्लैण्ड ने आटोमन साम्राज्य के विभाजन की योजना को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया चूंकि ये सभी उसकी आधारभूत नीति तुर्की की अखण्डता को बनाये रखने के विपरीत थे । इससे रूस के जार व इंग्लैण्ड के बीच विरोध की खाई और अधिक चौड़ी हो गई ।

3.5.4 पवित्र स्थानों के संरक्षण का झगड़ा

जैरूशलम और उसके आस-पास के पवित्र स्थानों के संरक्षण के लिए फ्रांस व रूस में आपसी टकराव शुरू हो गया । फ्रांस स्वयं को लैटिन सन्यासियों (Lation Monks) का संरक्षक समझता था जबकि रूस अपने आपको ग्रीक सन्यासियों (Greek Monks) का संरक्षक मानता था । वास्तव में यह झगड़ा तो यूं ही उत्पन्न हो गया । जार निकोलस व नेपोलियन तृतीय एक दूसरे से लड़ने का बहाना तलाश कर रहे थे । नेपोलियन तृतीय जार का इसलिए शत्रु था कि उसने नेपोलियन को शीघ्र ही फ्रांस का राजा स्वीकार नहीं किया था । नेपोलियन गौरवपूर्ण विदेश नीति अपनाकर फ्रांसवासियों में लोकप्रिय भी होना चाहता था । वह धार्मिक स्थानों का संरक्षण प्राप्त करके फ्रांस की बहुसंख्यक रोमन कैथोलिक जनता का समर्थन भी प्राप्त करना चाहता था । सीरिया के प्रश्न पर लुई फिलिप के काल में फ्रांस का जो अपमान हुआ था; वह उसे भी सम्मान में बदलने का इच्छुक था । यह सभी कुछ तभी संभव था यदि वह किसी युद्ध में कोई विजय हासिल करता ।

दूसरी ओर रूसी सम्राट जार निकोलस प्रथम पवित्र स्थानों पर संरक्षण के झगड़े को एक छोटे युद्ध का रूप देकर टर्की में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था । यदि उसे यह पता होता कि यह युद्ध इतना भयंकर रूप धारण कर लेगा तो ऐसा खतरनाक कदम वह कभी नहीं उठाता ।

3.5.5 ईसाई प्रजा पर संरक्षण की रूसी माँग

जार मात्र धार्मिक स्थानों पर संरक्षण प्राप्ति से ही संतुष्ट नहीं था । उसने टर्की में अपने विशेष राजपूत मैशिकोव को भेजकर यह मांग की कि टर्की साम्राज्य की सम्पूर्ण ईसाई प्रजा पर रूसी संरक्षण स्वीकार किया जाये । इससे समस्या और अधिक उलझ गई । टर्की

स्थित ब्रिटिश राजपूत रेडविलफ ने होशियारी से काम लेते हुए पवित्र स्थानों के संरक्षण व ईसाईयों के संरक्षण को अलग-अलग बना दिया व प्रथम मामले में रूस के अधिकार को तुर्की ने मान लिया । इससे रूस भी संतुष्ट नहीं हुआ और फ्रांस छटपटाने लगा ।

3.5.6 रूस द्वारा वेलेशिया व मोल्डेविया पर अधिकार

सन् 1853 ई0 में रूस ने पथ नदी को लांघकर माल्डेविया व वेलेशिया पर अधिकार कर लिया । निकोलस का विचार इन इलाकों पर कब्जा जमाने का नहीं था अपितु टर्की पर दबाव डालकर अपनी मांग मनवाने का था परन्तु इस आक्रामक कार्यवाही का इंग्लैण्ड व फ्रांस पर प्रतिकूल असर पड़ा ।

3.5.7 वियना नोट

युद्ध को टालने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस, प्रशा एवं आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के विएना नामक स्थान पर सन् 1853 ई0 में एक नोट तैयार किया । ब्रिटिश राजपूत रेडविलफ की सरकारी राय पर टर्की के सुल्तान ने इस नोट को मान लिया किन्तु उसकी प्राइवेट सलाह पर उसने इस नोट पर एक संशोधन प्रस्तुत कर दिया जिसे रूस के चार ने अस्वीकार कर दिया । परिणामत: दोनों ओर के विरोध ने कट्टर शत्रुता का रूप धारण कर लिया । युद्ध का होना अब स्वाभाविक ही था ।

3.5.8 टर्की द्वारा युद्ध की घोषणा

टर्की के सेनापति लोस्मान द्वारा रूस को यह चेतावनी दे दी गई कि वह पन्द्रह दिनों के भीतर माल्डेविया व वैलेशिया खाली कर दे । जब रूस ने चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया तो टर्की ने 23 अक्टूबर, 1853 ई0 को रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी ।

3.5.9 साइनोप का कत्लेआम

रूसी सेनाओं ने साइनोप नामक स्थान पर टर्की के समुद्री बेड़े को नष्ट कर दिया और तुर्की का कत्लेआम किया । इससे फ्रांस व इंग्लैण्ड की जनता भड़क उठी । उन्होंने अपनी सरकारों पर रूस के विरूद्ध युद्ध घोषित करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया । ब्रिटिश प्रधानमंत्री एबरडीन को अपनी इच्छा के विपरीत रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करनी पड़ी ।

3.5.10 इंग्लैण्ड तथा फ्रांस द्वारा संयुक्त चेतावनी

4 जनवरी, 1854 ई0 का इग्लैण्ड व फ्रांस के समुद्री बेड़े काला सागर में प्रविष्ट हुए । उन्होंने रूस को चेतावनी दी कि वह सेबेस्टोपोल की ओर वापस लौट जाए, माल्डेविया और वेलेशिया खाली कर दे । रूस द्वारा झंकार करने पर फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने संयुक्त रूप से 26 मार्च, 1854 ई0 को युद्ध की घोषणा कर दी ।

इस प्रकार क्रीमिया का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध प्रारम्भ हो गया । इस युद्ध में रूस के विरूद्ध इंग्लैण्ड, फ्रांस, टर्की तथा सार्डिनिया (इटली का राज्य) थे । सार्डिनिया ने इस युद्ध में इसलिए भाग लिया था कि वहां का चांसलर काबूर इटली के एकीकरण की समस्या को

अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर लाकर बड़े राष्ट्रों की सहानुभूति अर्जित करना चाहता था । सार्डिनिया जनवरी, 1855 ई0 में युद्ध में कूदा था । प्रशा तथा आस्ट्रिया युद्ध में तटस्थ रहे ।

3.6 क्रीमिया युद्ध की घटनाएं

युद्ध का प्रथम भाग: (जुलाई 1854)

जिन रूसी सेनाओं का तुर्की प्रदेशों पर अधिकार था, वे मार्च, 23 को डैन्यमब नदी पार करके सिलिस्ट्रीया (Silistria) पर जा धमकी और उन्होंने वहां घेरा डाल दिया । 29 मई को फ्रांस और इंग्लैण्ड के जंगी जहाजों ने तुर्की के किनारे से प्रस्थान कर वार्ना में सेनाएं उतार दीं । पांच दिन बाद आस्ट्रिया ने रूस को प्रथम अल्टीमेटम दिया और मांग की कि उसके प्रदेशों को रूस खाली कर दे । सिलिस्ट्रीया में रूसी सेनाओं ने बड़ी वीरता से आस्ट्रिया का मुकाबला किया था । अब फ्रेंच व ब्रिटिश सेनाएं तुर्की की सहायता के लिए शीघ्र पहुंच रही थीं; इसलिए रूस घबरा गया और उसने सिलिस्ट्रीया पर से घेरा उठा लिया तथा वह डैन्यूब नदी पार करके वापिस आ गया । अब रूस ने धीरे-धीरे अपनी सेनाओं को आस्ट्रिया व तुर्की के प्रदेश से हटाना शुरू कर दिया । ज्यों-ज्यों रूस पीछे हटता जा रहा था । आस्ट्रिया की फौजों का बढ़ाव आगे को हो रहा था और वे रिक्त प्रदेशों पर अधिकार करती जाती थी । सारे युद्ध काल में आस्ट्रिया की सेनाएं इन प्रदेशों में ही पड़ी रहीं । इस प्रकार जुलाई के अंत तक यह स्पष्ट हो गया था कि रूस का प्रथम आक्रमण विफल हो चुका है । रूस की कमजोरी से प्रोत्साहित होकर मित्राराष्ट्रों ने रूस के समक्ष चार मांगे रखीं जिन्हें चार शर्तें कहा जाता है । इन चार शर्तो पर रूस का स्पष्टीकरण मांगा गया । ये चार मांगें निम्नलिखित चार तथ्यों से संबंध रखती थीं-

1- ग्रीस के धार्मिक स्थानों पर रूस का संरक्षण
2- कालेसागर में रूस के अधिकार
3- डैन्यूब नदी में रूस के व्यापारिक विशेषाधिकार
4- प्रदेशों या राज्यों (Principalities) में रूस की मध्यस्थता के अधिकार ।

प्रारम्भ में तो रूस हिचका किन्तु फिर नवम्बर में उसने मित्र राष्ट्रों की माँगे मान ली । रूस ने इन मांगों का उत्तर देने में बहुत अधिक देर कर दी थी और सितम्बर में ही युद्ध का दूसरा दौर प्रारंभ किया जा चुका था और मित्र राष्ट्रों ने क्रीमिया पर आक्रमण कर दिया था ।

युद्ध का दूसरा भाग (सितम्बर 1854 सितम्बर 1855 तक)

क्रीमिया पर अत्यन्त कौशल से युद्ध किया गया । इस बार रूस के मध्य भाग पर आक्रमण नहीं किया गया क्योंकि इसी कारण नेपोलियन की हार हुई थी । रूस जैसे विशाल प्रदेश में जहाँ न रेलें थी और न ही अच्छी सड़कें । रूस के मदद, रसद व यातायात की अपार कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । इसमें संदेह नहीं कि मित्रराष्ट्रों को समुद्री मार्गो द्वारा भोजन और अन्य सामग्री प्राप्त करने में भारी असुविधा थी किन्तु रूस के सामने भी भोजन और अन्य रसद युद्ध क्षेत्र में पहुंचाने की भारी समस्या थी, विशेष रूप से जब रूस कीचड़ से भरा था । मित्र राष्ट्रों में मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Miss Florence Nightingale) ने घायलों की परिचर्या से भारी नाम कमाया । नाइटिंगेल के प्रचार से ब्रिटिश लोगों को पता चला कि ब्रिटिश सिपाहियों को अपरिचित जलवायु, अपर्याप्त भोजन एवं चिकित्सा साधन, अयोग्य प्रबंध, दीर्घ

सूत्रता और अधिकारियों के संकुचित दृष्टिकोण के कारण अपार कष्ट सहने पड़े थे किन्तु रूस की कष्ट गाथाएं और भी अधिक थीं; अन्तर केवल यह था कि रूसी सिपाहियों की कष्ट गाथाएं कम सुनने को मिली थीं ।

सिबेस्टोपोल का घेरा

सितम्बर, 1854 में मित्र राष्ट्रों ने एलमा पदी पर रूसियों को हराकर क्रीमिया में प्रवेश किया । इसके बाद मित्र राष्ट्रों ने सिबेस्टोपोल के चारों ओर से घेर लिया । बाद में युद्ध का केन्द्र यही रहा । यहां रूस ने बहुत बड़ा शस्त्रागार बना रखा था । इतिहासकार कैटल्बी के अनुसार- केवल कभी-कभी बाल्टिक सागर और आर्मीनिया में छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हुई किन्तु सारा क्रीमिया युद्ध वास्तव में मित्रराष्ट्रों द्वारा सिबेस्टोपोल का घेरा और रूसियों द्वारा उस घेरे को तोड़ने का प्रयत्न रहा ।

(i) बैलाक्लावा का युद्ध (अक्टूबर 25)

रूस की ओर से टाडली-बेन ने स्थल युद्ध में और एडमिरल कार्निलोब ने जल युद्ध में भारी दक्षता प्रदर्शित की किन्तु मंशिकोउ इतना दक्ष सेनापति नहीं था । मित्रराष्ट्रों द्वारा गोलाबारी किये जाने के प्रथम तीन सप्ताहों में रूस की ओर से मित्रराष्ट्रीय घेरे को तोड़ने के तीन प्रयत्न किये गये । रूसियों ने वेलाक्लवा और इन्करमैन पर आक्रमण करके मित्र राष्ट्रीय घेरे को तोड़ने का प्रयत्न किया परन्तु रूस की पराजय हुई ।

(ii) इन्करमैन का युद्ध (नवम्बर 5).

वेलाक्लावा और इन्करमैन के युद्ध ब्रिटिश इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । इन युद्धों के बाद मित्र राष्ट्रों ने सारे जाड़े के मौसम क्रीमिया पर घेरा डाले रखा । क्रीमिया युद्ध में घायलों की देखभाल का कार्य मिस फ्लोरेन्स नाइटिंगेल के सुपुर्द था । अथक परिश्रम के बाद उस साहसी महिला ने स्कूटरी में घायलों की आदर्श सेवा-सुश्रुषा का प्रबंध और संगठन किया । दूसरी ओर लियो टाल्सटाय एक रूसी स्वयं सेवक था । उसने युद्ध की यातनाओं की कहानियां अपने रूसी साथियों को सैनिक गोष्ठी भवनों या शिविरों में सुनाना प्रारंभ किया। बसन्त और ग्रीष्मकाल में मित्र राष्ट्रों की ओर से भी प्रयत्न प्रारंभ हुए । जून में मित्र राष्ट्रों ने मालाकाफ और रीडन को लेने का प्रयत्न किया किन्तु टाड़लीवेन ने मित्रराष्ट्रीय प्रयत्नों को विफल कर दिया । रूस की ओर से घेरे को तोड़ने का अंतिम प्रयत्न टेचरनाया (Tchernaya) नदी पर किया गया किन्तु प्रधान रूप से सार्डिनिया की सेवा की वीरता के कारण यह प्रयत्न भी विफल रहा । सितम्बर के प्रारंभ में मित्र राष्ट्रों ने पुन: कालाकोफ पर आक्रमण किया जिसमें रूस की पराजय हुई और अगले दिन 9 सितम्बर को रूसियों ने सेबिस्टोपोल के अपने गोला बारूद के भण्डार में आग लगा दी । इस प्रकार सेबिस्टोपोल का पतन हो गया ।

1855 की रूसी पराजय के कारण

सी. डी. एम. कैटल्बी के अनुसार-

1- एबर्डिन के स्थान पर पामर्स्टन का ब्रिटिश प्रधानमंत्री बनना ।

2- पेलेसीयर फ्रेंच सेनापति बनकर आया और सार्डिनिया ने बहुसंख्यक सेना मित्रराष्ट्रों की सहायतार्थ भेज दी ।

3- आस्ट्रिया दुहरी चाल रहा था और नेपोलियन-III ब्रिटेन की मैत्री से पीछा छुड़ाना चाहता था ।

4- रूस की पराजय का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि फरवरी, 1855 में जार निकोलस की मृत्यु हो गई । वास्तव में रूस की युद्ध व्यवस्था का आधार ही यह था कि जनवरी और फरवरी की कठोर सर्दी में मित्र राष्ट्रों को हरा दिया जावे किन्तु फरवरी में जार की मृत्यु से सारी आशाएं समाप्त हो गई । जनवरी-फरवरी में स्वयं जार को ही समाप्त कर दिया व रूस की हार हो गई ।

3.7 क्रीमिया युद्ध का अंत व पैरिस की संधि

जार निकोलस की मृत्यु के पश्चात् अलैकजेण्डर-II रूस की गद्दी पर बैठा । उस पर जो राजनैतिक व सैनिक दबाव पड़ रहे थे उन्हें वह बहुत दिनों तक टाल नहीं सकता था । नवम्बर में रूसियों ने आर्मीनिया के कार्स (Kars) नामक किले पर अधिकार कर लिया था अत: रूस का आत्मसमर्पण उतना अपमानजनक नहीं रहा जितना अन्य होता; आस्ट्रिया ने दूसरा अल्टीमेटम दिया जिसमें रूस के संधि की शर्तें भी दी गई । रूस ने स्वीकार कर लिया और मार्च, 1356 में पैरिस की संधि के अनुसार क्रीमिया का युद्ध बंद हो गया ।

पैरिस की संधि की शर्तें

1- कालासागर को तटस्थ घोषित कर दिया गया परन्तु रूस या अन्य कोई भी शक्ति न तो अपने जगी जहाज कालासागर में ला सकती थी और न ही शस्त्रागार बना सकती थी ।

2- डेन्यूब नदी को एक अन्तर्राष्ट्रीय तटस्थ नदी घोषित कर दिया गया । बेसरेबीया का प्रदेश मोल्डेबिया को देकर रूस को डेन्यूब के किनारे से हटना स्वीकार करना पड़ा ।

3- टर्की को यूरोप के राष्ट्र समूह में सम्मिलित कर लिया गया तथा सभी यूरोपीय राष्ट्रों ने उसकी स्वतंत्रता एवं सुरक्षा के बनाये रखने की गारण्टी दी ।

4- मोल्डेविया तथा वैलेशिया पर रूसी संरक्षण समाप्त कर दिया गया व इनकी स्वतंत्रता टर्की की संरक्षकता में स्वीकार कर ली गई ।

5- टर्की के सुल्तान ने अपनी ईसाई प्रजा के विशेषाधिकारों की पुष्टि की तथा रूस सहित सभी सत्ताओं ने सुल्तान तथा उसकी प्रजा के बीच हस्तक्षेप करने का अधिकार त्याग दिया ।

6- सर्बिया की स्वतंत्रता टर्की के प्रभुत्व में स्वीकार कर ली गई ।

7- कार्स का प्रदेश टर्की को तथा क्रीमिया रूस को वापिस मिल गया ।

3.8 क्रीमिया युद्ध तथा पैरिस संधि की समीक्षा

इस युद्ध में अपार जन-घन की हानि हुई तथा यह युद्ध बिल्कुल निरूद्देश्य एवं निष्फल हुआ । इतिहासकार मैरियट अपनी 'पुस्तक' दि रीमेंकिंग ऑफ माडर्न यूरोप में लिखता है- क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप रूस की दक्षिण की ओर प्रगति कम से कम अस्थाई रूप से रूक गई और तुर्क साम्राज्य को नया जीवन प्राप्त हो गया साथ ही यूरोपीय सत्ताओं ने पूर्वी समस्या के स्वयं अकेले ही सुलझाने के रूस के अधिकार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया । म्यूर (Muir) अपनी पुस्तक ' 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ कॉमनवैल्थ,' ' वोल्युम II में लिखता है- ' 'पैरिस

का शांति सम्मेलन पूर्वी समस्या को सुलझाने के लिए हुआ था किन्तु उसने उसे और अधिक जटिल बना दिया । तुर्की की स्वतंत्रता व उसके साम्राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय गारण्टी मिल गई जिसका अर्थ था कि इस विषय पर यूरोप की महान् सत्ताओं की सम्मति के बिना को परिवर्तन नहीं हो सकता था ।' '

इतिहासकार हेजन अपनी पुस्तक माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री में लिखता है- मित्र राष्ट्रों का अनुमान था कि टर्की का सुल्तान सुधार की नीति का अवलम्बन कर अपनी ईसाई प्रजा को संतुष्ट करेगा और टर्की अन्य सभी राज्यों की कोटि में आ जायेगा परन्तु सुल्तान ने अपने वचन का पालन नहीं किया और उसकी ईसाई प्रजा की स्थिति और भी खराब हो गई ।

कालासागर को तटस्थ बनाना रूस को अपमानित करना ही नहीं उसे अत्यन्त निर्बल बना देना था और यह निश्चित था कि रूस इस स्थिति में चुप बैठा नहीं रह सकता था । आगे चलकर मौका पाकर उसने इस अपमान को धोने का प्रयास किया । 14 वर्ष बाद उसने बिस्मार्क से समझौता कर उसकी तटस्थता को भंग कर दिया । 1678 ई. में उसने बसेरेनिया को भी फिर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया । रूस की प्रगति दक्षिण की ओर तो रूक गयी परन्तु उसने मध्य एशिया में बढ़ना शुरू कर दिया तथा वर्षो तक इंग्लैण्ड के लिए उधर परेशानी का कारण बना रहा ।

निकोल्स की टर्की साम्राज्य के बंटवारे की मांग को इंग्लैण्ड ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इससे इंग्लैण्ड को बाल्कन प्रायद्वीप में रूस के प्रभाव के बढ़ जाने का भय था । इतिहासकार फिलिप्स (Philips) अपनी पुस्तक माडर्न यूरोप में लिखता है- यदि निकोलस की योजना सफल हो जाती तो एक निर्बल तुर्क साम्राज्य के स्थान पर कई सशक्त एवं परस्पर लड़ते हुए इसाई राज्य स्थापित हो जाते । इंग्लैण्ड व फ्रांस टर्की के साम्राज्य को बनाये रखना चाहते थे परन्तु बाद में उन्होंने इस संबंध में अपनी भूल महसूस की और प्रथम महायुद्ध के पहले तक वह साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया । इस प्रकार जिन उद्देश्यों को सामने रखकर यह युद्ध लड़ा गया था उनकी दृष्टि से यह युद्ध बिल्कुल बेकार सिद्ध हुआ ।

सेविल (Schevill) अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप में' लिखता है- ' 'क्रीमिया के युद्ध से इंग्लैण्ड को कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टे उसका राष्ट्रीय ऋण बढ़ गया । फ्रांस को भी इस युद्ध से कोइ लाभ नही हुआ । नेपोलियन की नीति व्यक्तिगत थी राष्ट्रीय नहीं; जो कुछ लाभ हुआ वह नेपोलियन को व्यक्तिगत लाभ था । 1856 में यूरोप की महान् शक्ति रूस को पराजित कर मास्को पराजय का बदला लिया व फ्रांस का गौरव बढ़ाया ।' '

पैरिस संधि की उपलब्धियां

मैरियट के अनुसार- ' 'इस संधि से टर्की को एक नया जीवन मिल गया और रूस की दक्षिण की तरफ प्रगति रूक गई ।' '

हेजन लिखता है कि- ' 'यह युद्ध पूर्वी समस्या का समाधान ढूंढने में असफल रहा क्योंकि सुल्तान ने ईसाई प्रजा के लिए सुधार करने का वादा पूरा नहीं किया । "

टेलर की मान्यता है कि इस संधि ने रूस और तुर्की के संबंधों की समस्या का हल तीन प्रकार से निकाला था- प्रथम तुर्की ने सुधार करने का वादा किया । द्वितीय काले सागर को तटस्थ घोषित कर दिया व तृतीय डेन्यूब के प्रदेशों को रूस के अधीन नहीं रखा गया ।

3.9 क्रीमिया युद्ध का प्रमुख राष्ट्रों पर प्रभाव

1- रूस का प्रभाव

रूस की पराजय से उसकी मानहानि तथा सैनिक प्रतिष्ठा गिर गई । रूसी जनता में नव चेतना जागृत हुई व सुधारों की मांग की जाने लगी । अलैकजेण्डर II के युग में सुधार कार्य प्रारंभ हुए व नये युग का शुभारंभ हुआ ।

2- इंग्लैण्ड पर प्रभाव

जिन उद्देश्यों को लेकर इंग्लैण्ड लड़ा था वे उद्देश्य उसे प्राप्त नहीं हो सके उल्टे उसके राष्ट्रीय सा में वृद्धि हो गई ।

3- फ्रांस पर प्रभाव

नेपोलियन ने इस युद्ध में विजयी होकर अपनी मास्को पराजय के अपमान का बदला ले लिया तथा देश में अपनी स्थिति सुदृढ़ की । इससे उसका सम्मान यूरोपीय राष्ट्रों में बढ़ गया तथा टर्की के साम्राज्य में उसके व्यापारिक हित सुरक्षित हो गये ।

4- इटली पर प्रभाव

इटली के एकीकरण में आने वाली अनेक बाधाओं का निवारण हो गया । आस्ट्रिया व रूस में शत्रुता हो जाने से आस्ट्रिया की शक्ति घट गई । मैरियट का कथन है कि- सैनिक शक्ति के रूप में इस युद्ध से सार्डीनिया की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित हो गई । उसे इंग्लैण्ड की सहानुभूति व नेपोलियन का सक्रिय समर्थन प्राप्त हो गया तथा परोक्ष रूप से जर्मनी के एकीकरण में भी सहायता मिली क्योंकि आस्ट्रिया का साम्राज्य इटली की भांति जर्मनी के एकीकरण के लिए भी एक बाधा थी ।

इतिहासकार कैटल्बी (Ketelbey) के अनुसार- क्रीमिया युद्ध के अप्रत्यक्ष परिणाम और अधिक दूरगामी थे । क्रीमिया के कीचड़ से एक नये इटली का जन्म हुआ और कुछ कम स्पष्ट रूप से एक नये जर्मनी का जन्म भी इसी से हुआ । इस युद्ध से आस्ट्रिया का शत्रु रूस बन गया था और दूसरी ओर प्रशा के प्रति रूस का झुकाव हो गया था । प्रशा की वास्तविक तटस्थता को रूस ने अधिक सराहा और बिस्मार्क से आस्ट्रो प्रशियन युद्ध के समय रूस की तटस्थता प्राप्त हो गई ।

5- आस्ट्रिया पर प्रभाव

आस्ट्रिया ने इस युद्ध में अपना जो व्यवहार रखा उससे रूस जैसे महान् देश की शत्रुता मोल ले ली थी क्योंकि मध्य यूरोप में आस्ट्रिया का प्राधान्य बहुत कुछ रूस के सहयोग पर निर्भर करता था । 1849 का हंगरी का विद्रोह रूस के सहयोग से ही दबाया गया था तथा 1950 में आस्ट्रिया ने प्रशा को रूस की मदद से ही नीचा दिखाया था ।

कैटल्बी लिखते हैं कि - क्रीमिया का युद्ध यूरोपीय इतिहास में एक युगान्तकारी घटना। थीं ।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1- पूर्वी समस्या क्या थीं;? पूर्वी समस्या के प्रति प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों के दृष्टिकोण की समीक्षा करें ।

2- क्रीमिया के युद्ध से पूर्व घटित पूर्वी समस्या के संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं की विवेचना करें ।

3- क्रीमिया युद्ध के कारण एवं परिणामों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें ।

4- क्रीमिया का युद्ध 19 वीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना थी विवेचना करें।

5- क्रीमिया के युद्ध के उपरांत पैरिस की संधि एवं प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों पर पड़े इसके प्रभाव का मूल्यांकन करें ।

6- 1856 से 1870 के मध्य पूर्वी समस्या की घटनाओं का अध्ययन करें ।

3.11 प्रासंगिक पठनीय पुस्तकें

सी0 डी0 एम0 कैटल्बी : ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाईम्स

ए0 जे0 पी0 टैलर : स्ट्रगल फार मास्ट्री इन यूरोप

मैरियट : दि रिमेकिंग आफ माडर्न यूरोप

म्यूर : ए शार्ट हिस्ट्री आफ कामनवैल्थ, वोल्युम II

हैजन : माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री

फिलिप्स : माडर्न यूरोप

शैविल : ए हिस्ट्री आफ यूरोप

इकाई-4

इटली का एकीकरण

4.0 उद्देश्य

4.1 पृष्ठभूमि: नवीन युग की शुरूआत

4.2 नेपोलियन और इटली

4.3 1815 ई0 में इटली

4.4 इटली के एकीकरण में बाधाऐं

4.5 एकीकरण में सहायक तत्वों का उदय

4.5.1 कार्बोनरी

4.5.2 आर्थिक विकास

4.5.3 प्रारम्भिक विद्रोहों का इटली पर प्रभाव

4.5.4 लेखकों के प्रयास

4.5.5 मेजिनी और युवा इटली

4.5.6 उदार राजतन्त्रवादी

4.5.7 पोप की उदारवादी नीति

4.5.8 1848 की क्रान्ति और इटली

4.6 अनुभागीय सारांश और अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 एकीकरण यथार्थता की और

4.7.1 विक्टर एमेनुअल द्‌वितीय (1849-1870)

4.7.2 कावूर (1810-1861)

4.7.3 क्रीमिया का युद्ध और कावूर

4.7.4 नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति

4.7.4.1 आर्सिनी काण्ड

4.7.4.2 प्लोम्बियर्स समझोता

4.7.4.3 आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध

4.7.4.4 विला फ़्रांका की विराम सन्धि

4.7.5 मध्य इटली का विलय

4.7.6 नेपल्स और सिसली का विलय

4.7.6.1 गैरीबाल्डी (1807-1882)

4.7.6.2 सिसली में विद्रोह

4.7.6.3 नेपल्स पर अधिकार

4.7.6.4 कावूर द्‌वारा बोब की रियासतों पर आक्रमण

4.7.6.5 गैरीबाल्डी की महानता

4.7.7 कावूर का मूल्यांकन
4.7.8 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण
4.7.8.1 वेनीशिया की प्राप्ति
4.7.8.2 रोम की प्राप्ति
4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न
4.9 सन्दर्भ अध्ययन सामग्री

4.0 उद्देश्य:

इस इकाई का उद्देश्य इटली की उन प्रमुख ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं से आपको अवगत कराना है, जिन्होंने इटली के एकीकरण को पूर्णता प्रदान की । इस इकाई के मध्ययन के पश्चात् आप इटली के एकीकरण की जटिलता को समझ सकेगें तथा यह भी जान सकेंगे कि कौन से विभिन्न कारकों के द्वारा इटली का एकीकरण सम्भव हो पाया । प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप निम्न बातें समझ सकेंगे-

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में जिस 'नवीन युग' की शुरूआत हुई उसने इटली को कैसे प्रभावित किया ।

आर्थिक कारकों सहित वे कारक जिन्होंने इटली के एकीकरण को उत्प्रेरणा प्रदान कर "प्रतिक्रिया के युग" के प्रभाव को कमजोर बनाया । मेजिनी सहित अन्य लेखकों ने किस तरह से 'मानसिक धरातल' पर इटली को "एक' किया ।

वे घटनाएं, जिन्होंने इटली के एकीकरण में बाधक वास्तविक शक्तियों से अवगत कराया ।

इटली के एकीकरण के सूत्रधार काबूर ने किस प्रकार एकीकरण के अधिकांश भाग को सफलता के साथ सम्पादित किया । साथ ही गैरीबाल्डी की वे सेवाएँ जो एकीकरण के मार्ग में मील का पत्थर साबित हुई।

विक्टर एमेनुअल के विभिन्न कूटनीतिक पूर्ण कार्य, जिसके बिना काष्ठ का सपना अधूरा रहता ।

वे परिस्थितियाँ जिन्होंने एकीकरण के यज्ञ को सहज की सफलता के मार्ग पर प्रशस्त किया ।

4.1 पृष्ठभूमि: नवीन युग की शुरूआत

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति एवं नेपोलियन के आक्रमणों ने यूरोप राष्ट्रीयता की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । यूरोप के कई राज्यों में नेपोलियन के द्वारा ही ' 'नवयुग' ' का संदेश पहुंचा। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इसी राष्ट्रीयता की भावना ने नेपोलियन के विरूद्ध उस शक्ति को एकत्र किया था जिसके सम्मुख यह विश्व-विजयी योद्धा भी खड़ा नहीं रह सका था । नेपोलियन के पतन के पश्चात यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने इस राष्ट्रीयता की भावना को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। किन्तु इतिहास में जो शक्ति एक बार उत्पन्न हो जाती है, उसे हमेशा के लिए नष्ट नहीं किया जा सकता ।

1815 से 1871 ई0 तक राष्ट्रीयता के आधार पर राष्ट्र-राज्यों का निर्माण हुआ । नेपोलियन वह पहला व्यक्ति था, जिसने इटली और जर्मनी के राज्यों को भौगोलिक नाम के स्थान पर वास्तविक रूपरेखा प्रदान की, जिससे इटली एवं जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ । इन देशों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'नेपोलियन ने उनके प्रति उस राजकुमार की तरह कार्य किया, जिसने जंगल में खोयी हुई राजकुमारी को जादू की लकड़ी घुमाकर लगा दिया था । ' इन देशों के नागरिक राष्ट्रीयता की भावना से शून्य मीठी नींद सो रहे थे । नेपोलियन के कार्यो से इन देशों में अनजाने ही राष्ट्रीयता कीं भावना जागृत हुई ।

यूरोप में 1815 ई0 से 1338 ई0 के युग की एक मुख्य विशेषता यह रही है कि इस युग में उदारवादी व राष्ट्रवादी तत्वों का रूढ़िवादी शक्तियों में संघर्ष चलता रहा । ऐसी स्थिति इसलिए हुई क्योंकि राष्ट्रवाद एवं उदारतावाद के जन्म ने रूढ़िवाद के समक्ष चुनौती प्रस्तुत कर दी । रूढ़िवादी शक्तियां जनान्दोनलों को समाप्त करने के पक्ष में थीं क्योंकि उन्हें एक दूसरी फ़्रांसीसी क्रान्ति का भय सता रहा था । शक्तिशाली होने के बावजूद पुराना समाज, जिसके मुख्य तत्व राजा, अभिजात्य-वर्ग तथा चर्च थे, अधिक समय तक प्रगतिशील शक्तियों का सामना नहीं कर सकता था ।

राजनीतिक क्षेत्र में 1815 ई0 से लेकर 1850 ई0 तक का काल महती अभिलाषाओं का काल था, सफलताओं का नहीं । परन्तु इस काल को राजनीतिक तैयारियों का काल भी कह सकते हैं । वे राष्ट्रीय एकता और राजनैतिक स्वतंत्रता की भाषा में सोचने लगे थे । किन्तु उनके सपनों के साकार होने में अपार बाधाएं थीं- निरंकुश राजाओं का दमन और सर्व साधारण में अचेतनता ।

फ़्रांसीसी क्रान्ति ने राजनीति को राजदरबारों और प्राइवेट राज-कक्षों से बाहर कर उसे अखबारों, सड़कों और सर्व साधारण की वस्तु बना दिया । इसके विपरीत सम्राट एवं मन्त्रिगण यह विचार स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे कि राज्यों की राजनीति या शासन के विषय में सर्व-साधारण को विचार करने का भी अधिकार है ।

- संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने राष्ट्रवाद को सफल एवं गरिमामय बनाया । राष्ट्रवाद का प्रसार फ्रांस की सीमाओं से बाहर यूरोप के जिन देशों में हुआ उन देशों में इटली और जर्मनी प्रमुख थे ।

4.2 नेपोलियन और इटली:

नेपोलियन ने इटली की विजय के पश्चात् इटली के गणतंत्र की स्थापना की और सम्राट बनने के बाद अनेक छोटे-बड़े राज्यों को समाप्त कर उन्हें केवल तीन भागों में बाँट दिया था । सामन्तवादी व्यवस्था की समाप्ति तथा आन्तरिक व्यापार पर प्रतिबंधों का अन्त-इटली वासियों को फ्रांस की सबसे बड़ी देन थी । इटली में एक समान नियम-कानून लागू किये गये । यह नेपोलियन ही था, जिसने इटलीवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत का पुन: स्मरण करवाया । किन्तु जब स्वयं नेपोलियन ने ही इटली को उपनिवेश के रूप में प्रयोग करना शुरू किया तो इटलीवासियों की राष्ट्रवादी भावनाएं भड़क उठी । इन्हीं कारणों की वजह से यह कहा जाता है

कि नेपोलियन ही इटली में राष्ट्रवाद का जन्मदाता था । नेपोलियन के पश्चात् वियेना-कांग्रेस ने इटली को फिर छोटे-छोटे सामन्ती राज्यों में विभक्त कर दिया ।

4.3 1815 ई0 में इटली:

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इटली नाम का कोई देश नहीं था, किन्तु इटली भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक पूर्ण इकाई था । उत्तर में आल्पस पर्वत और तीन तरफ से सागरों से घिरे, यूरोप के मध्य दक्षिण में स्थित यह प्रायद्वीप पूर्णत: सुरक्षित था । वियेना-व्यवस्था से इटली फिर से विभक्त हो गया । इटली के उत्तर-पश्चिम में सार्डीनिया-पीडमान्ट का राज्य था, जहाँ सेवाय-वंश का शासन था । उसके उत्तर-पूर्व में लोम्बार्डी और वेनीशिया के प्रदेश थे, जिन पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था । परमा-मोडेना और टस्कनी, यद्‌यपि स्वतंत्र राज्य थे, तथापि उन पर आस्ट्रिया का प्रभाव था । मध्य में पोप का अपना स्वतंत्र राज्य था । दक्षिण में नेपल्स और सिसली थे, जहाँ बूर्बो-वंश का शासन था ।

वियेना व्यवस्था इटली के सन्दर्भ में राष्ट्रीय तथा सामाजिक-आर्थिक हितों के विरूद्ध एक निर्णय था । राजतंत्र की रक्षा, पोप को अनुस्थापित करना तथा फ्रांस के विरूद्ध व्यूह रचना के सिद्धान्त पर ये निर्णय लिये गये थे । इस प्रकार 1815 ई0 में इटली एक बार फिर विभाजित, राजतंत्रों के अधीन, रूढ़िवादी चर्च के नेतृत्व में तथा कुलीन वर्ग के अधीन था । उसमें एकता का पूर्ण अभाव था । इसलिए तो आस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिख ने कहौ था कि ' 'इटली तो एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है'' । इटली का कोई झंडा नहीं होने, यूरोपीय राष्ट्रों में उसकी गिनती नगण्य होने तथा विभिन्न राज्यों की अलग-अलग मुद्राएं होने पर मेजिनी ने दुःख व्यक्त किया था । इसलिए इटली के एकीकरण के संघर्ष में इटली के नागरिक को यह सिद्ध करना था कि इटली एक संगठित जन-समूह. है, जिसकी अपनी भौगोलिक सीमाएं हैं तथा जिसकी ऐतिहासिक परम्पराएं, शक्तिशाली सांस्कृतिक- आर्थिक व्यवस्था और आधार है । 1815 ई0 से 1870 ई0 तक इटली ने अपने पुनर्जागरण आन्दोलन द्‌वारा इन सभी संकल्पनाओं को ठीक सिद्ध किया ।

4.4 इटली के एकीकरण में बाधाएं:

इटली के एकीकरण में मूलभूत बाधा इटली में प्रतिक्रियावादी विदेशी प्रभुत्व का होना था । इटली पर आस्ट्रिया का प्राधान्य था । इसलिए कावूर ने कहा था- आस्ट्रिया इटली की स्वतंत्रता का प्रथम शत्रु है । लोम्बार्डी एवं वेनेशिया उसके सीधे नियंत्रण में थे और मौडेना व टस्कनी पर आस्ट्रिया से सम्बन्धित राजकुमारों का अधिकार था और परमा की रानी लुईसा आस्ट्रिया की राजकुमारी थी ।

दूसरी बाधा इसकी भौगोलिक स्थिति थी । एक लम्बे कटे हुए देश के रूप में इटली मोटे तौर पर तीन राजनीतिक इकाईयों-उत्तरी मध्य और दक्षिणी इटली-में विभक्त था ।

तीसरी बाधा पोप की उपस्थिति थी । पोप अपने राज्य रोम पर अपनी सस्ता को बनाए रखना चाहता था । इसके अतिरिक्त कैथोलिक यूरोप पोप के अस्तित्व को कभी नष्ट नहीं होने देना चाहता था ।

चौथी बाधा यह थी किस तरह की विचारधारा के अन्तर्गत इटली का एकीकरण किया जाए, इस बारे में राजनीतिज्ञ एक मत नहीं थे । मेजिनी इटली का एकीकरण एक गणराज्य के रूप में चाहता था । गैरीबाल्डी भी इसका समर्थक था । जियोबर्टी का संघीय-राज्य का सिद्धान्त था । वह पोप के अधीन इटली के सभी राज्यों के संघ का समर्थक था ।

पाँचवी बाधा यह थी कि इटली में अभी तक राष्ट्रीय चेतना जागृत नहीं -हुई थी । इटली प्राचीन ग्रीस की तरह विभाजित था, जिसमें सभी राज्यों की अपनी अलग-अलग परम्पराएं एवं रीति-रिवाज थे । एक राज्य दूसरे राज्य से मिलकर नहीं रहना चाहता था । मैटरनिक के शब्दों में, ' 'इटली में एक राज्य-दूसरे राज्य के विरूद्ध, एक शहर दूसरे शहर के विरूद्ध, एक परिवार दूसरे परिवार के विरूद्ध था ।' ' यहाँ तक कि इटली के राजकुमारों ने भी अपने स्वार्थ तथा लाभ के लिए राष्ट्रीय हितों को बलिवेदी पर चढ़ा दिया था ।

- छठी बाधा इटली का सामन्तवादी एवं कुलीन-वर्ग था । वह नेपोलियन के पतन के पश्चात् पुन: सामन्तवादी तथा जागीरदारी प्रथा स्थापित करना चाहता था । उसकी शक्ति जागीरें तथा राजनीतिक प्रभुता थीं । 1815 ई0 में इटली में औद्योगिक क्रान्ति के चिन्ह नाममात्र को भी विद्यमान नहीं थे । वहाँ के लोगों का परिचय अभी यातायात के नवीन साधनों और उत्पादन के आधुनिक माध्यमों से नहीं हुआ था । इसलिए इटली में भूमि अभी भी महत्वपूर्ण सम्पत्ति थी और उसके साथ जुड़ी थी- परम्परागत सामाजिक तथा राजनीतिक मान्यताएं । इस प्रकार भूमि से जुड़े कुलीन वर्ग का यह डर स्वाभाविक था कि एकीकरण के होने से उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा ।

इन सबके अतिरिक्त आर्थिक विषमताओं ने भी एकीकरण के मार्ग को अवरूद्ध किया । दक्षिणी इटली अविकसित तथा ग्रामीण था जबकि उत्तरी इटली अर्द्ध-औद्योगिक ।

4.5 एकीकरण में सहायक तत्वों का उदय:

इटली के एकीकरण में विभिन्न विकट बाधाओं के बावजूद वहाँ स्वतंत्रता, समानता तथा देश प्रेम की भावनाएं अधिक समय तक दबी नहीं रह सकी । इटली के कुछ देश-भक्तों और लोकतंत्र के समर्थकों ने मिलकर स्वतंत्रता और उदारवाद की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का निर्णय किया । इन उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए इटली में कई गुप्त संस्थाओं की स्थापना हुई । इनमें कार्बोनरी प्रमुख थी । यह स्मरणीय है कि गुप्त-संस्थाओं के योगदान से अभीष्ट परिणाम न निकल सके क्योंकि इन संस्थाओं के कार्यो में न तो एक-रूपता थी और न ही सम्बद्धता थी । इनमें आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, छली और बदमाश सभी को आश्रय मिला हुआ था । इन संस्थाओं के लक्ष्य यथार्थ से परे थे । फिर भी गुप्त संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित क्रान्तिकारी आन्दोलन ने लोगों को झकझोर दिया ।

4.5.1 कार्बोनरी:

इटली के कोयला झोंकने वालों की इस गुप्त संस्था की स्थापना 1810 ई0 में नेपल्स में हुई थी । कार्बोनरी की शाखाएं समस्त इटली में फैली हुई थीं और उसमें सभी वर्गो के लोग सम्मिलित थे । इसमें कुलीन-वर्ग, सैनिक अफ्सर, किसान, धर्मगुरू, यहाँ तक कि बुर्जआ वर्ग ने

भी इस संस्था की सदस्यता अर्जित की । इसके सदस्य सांकेतिक भाषा में धार्मिक उत्सवों के बहाने चुपके-चुपके राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे । इस संस्था के दो मुख्य उद्देश्य थे- विदेशियों को - इटली से बाहर निकालना और वैधानिक स्वतंत्रता की स्थापना करना । इस संस्था के तिरंगे झण्डे ने- काला, लाल और नीला रंग वाला झण्डा-शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली और लोग उसकी पूजा करने लगे । 1831 ई0 तक यही झण्डा क्रान्ति का झंडा बना रहा ।

4.5.2 आर्थिक विकास:

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इटली आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ देश थीं (यहाँ की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी हुई थी । भूमि उपजाऊ नहीं थी । खेती-बाड़ी इटली के केवल आधे हिस्से में ही हो सकती थी । इसका औद्योगिक स्तर केवल दस्तकारी तक ही सीमित था । व्यापार का बहुत कम विकास हुआ था । बैंकिग के साधन सीमित थे । औद्योगिक विकास और आविष्कार सम्बन्धी कार्य नाम-मात्र के ही थे । इटली के पिछड़े हुए औद्योगिक-स्वरूप के पीछे एक बड़ा कारण वहाँ आवागमन के साधनों का अभाव होना था । सामूहिक इटली में जल-मार्गों का अभाव था । इटली का सम्पर्क केवल तटीय जल-मार्गों द्वारा था ।

18 वीं शताब्दी के अन्त से पूर्व कुछ लेखकों ने, जिनमें फर्डिनेंडो-गलियानी, सीजारे बैकारिया, पीटरो बैटी इत्यादि प्रमुख थे, आर्थिक सुधारों की ओर इटली का ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था । 1730 ई0 से 1733 ई0 के मध्य में कारलो इमैन्योल तृतीय ने सार्डीनिया में और 1790 से 1829 ई0 के मध्य फर्डिनेंड तृतीय ने टस्कनी में आर्थिक-औद्योगिक सुधार लागू कर दिये थे । बाद के इटली के प्रमुख अर्थ-शास्त्रियों- गियन डोमिनिको, रामोग्नोसी, फेडेरिको कॉनफलेनिरी, कार्लोकैटलेनियो- ने आर्थिक सुधारों की दलील दी । उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता की माँग की, राष्ट्रीय बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहन की मांग की, आवागमन के अच्छे साधनों की माँग की और यूरोप के विकसित औद्योगिक देशों से तकनीकी ज्ञान के आयात की माँग की । नेपोलियन की देन के साथ यह इन्हीं अर्थशास्त्रियों की देन थी कि इटलीवासी आर्थिक सहयोग और एकता में इटली के एकीकरण का भविष्य देखने लगे ।

इटली में भूमि सम्बन्धी सुधारों की शुरूआत नेपोलियन ने की थी । उसने कृषकों को भूमि के पट्टा अधिकार दिये और सामन्तों के सभी स्वामित्व अधिकार समाप्त कर दिये । इटली में यह कृषि-भूमि सम्बन्धी परिवर्तन इतना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि 1815 के पश्चात् पुन: स्थापना के द्वारा लौटी हुई शक्तियाँ 1815 से पहले के सामन्तों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों को पुन: दिलाने में असमर्थ रही । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इटली में नये औद्योगिक केन्द्र- स्थापित हो गये और नई तकनीक का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा । गन्धक का उत्पादन कई गुना बढ़ गया । सूती-कपड़ा उद्योग में कई गुना वृद्धि हुई । मशीन बनाने का उद्योग भी पनपने लगा । स्पिनिंग जेनी, मशीन करघें, वाटर व्हील्स, छापे की मशीनें तथा रेल के डिब्बे इत्यादि बढ़ने लगे । इटली में जलपोत निर्माण उद्योग में भी तरक्की हुई ।

19 वीं शताब्दी के आरम्भ में पूंजी आधार पर कृषि के विकास ने इटलीवासियों में केवल नवीन आर्थिक चेतना ही उत्पन्न नहीं की, वरन् इटली के औद्योगिक विकास में भी उसकी भूमिका उल्लेखनीय रही । कृषि सम्बन्धी नई मंडियों ने आवागमन के नये साधनों की आवश्यकता का अनुभव किया ।

उत्तरी व मध्य इटली में शीघ्र ही रेलवे लाइनों का बिछना शुरू हो गया और भाप के इंजन का प्रयोग आरंभ हुआ । यह उल्लेखनीय है कि इटली में रेलवे का विकास फ्रांस या जर्मनी की अपेक्षा कम था । इस धीमे विकास के कई कारण थे; जैसे कि इटली की भौगोलिक आकृति, सामान्य आर्थिक पिछड़ापन और पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण रेलवे-निर्माण पर अत्यधिक व्यय । फिर भी धीरे-धीरे रेलवे लाइनें बिछाने का काम चलता रहा । 1861 ई0 तक इटली में 1623 किमी0 लम्बी रेलवे लाइनें बिछ चुकी थी और यह कार्य केवल तीस वर्षो में हुआ था । इटली ने आरम्भ में इंजन इंग्लैण्ड से खरीदे किन्तु बाद में वह स्वयं बनाने लगा । 1854 ई0 में इटली ने पहला रेलवे इंजन जेनोआ में बनाया । इटली के एकीकरण में रेलवे के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता है । इसका केवल इटली का आर्थिक व्यवस्था पर ही प्रभाव नहीं पड़ा, अपितु इसने राजनीतिक चेतना के विकास में भी योगदान दिया ।

इटली में गिल्ड अर्थ-व्यवस्था 1815 ई0 से पहले ही विखण्डित होना आरंभ हो गई थी और 1845 ई0 तक यह पूर्ण-रूपेण समाप्त हो चुकी थी । इससे भी इटली के आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन आया ।

धीरे-धीरे इटलीवासी इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि औद्योगिक विकास के लिए पुरातन व्यवस्था को समाप्त करना- आवश्यक है क्योंकि ऐसा करने पर ही व्यापार और उद्योग पर लगे प्रतिबन्ध दूर हो सकते थे । नये उद्यमी जन्म ले सकते थे और आर्थिक-क्रियाओ को बढ़ावा मिल सकता था ।

4.5.3 प्रारम्भिक विद्रोहों का इटली पर प्रभाव:

1820 ई0 में गुप्त संस्थाओं द्वारा प्रदर्शित क्रान्तिकारी आन्दोलनों का एक कम आरम्भ हुआ, जो तीस वर्षो तक चलता रहा । 1820 ई0 के स्पेन के विद्रोह से प्रेरणा पाकर नेपल्स एवं पीडमान्ट की जनता ने वहाँ के शासकों से संविधान स्थापना की माँग की । सबसे पहला विद्रोह नेपल्स में हुआ, किन्तु आस्ट्रिया द्वारा सैनिक हस्तक्षेप के कारण यह असफल रहा । अभी नेपल्स के विद्रोह को दबाया भी न जा सका था कि पीडमान्ट और लोम्बार्डी में हलचल आरंभ हो गयी । पुन: आस्ट्रिया की सेनाओं ने विद्रोह को दबा दिया । इस प्रकार इटली में एक बार फिर राजतंत्र को सुरक्षित किया गया परन्तु जनता की संवैधानिक माँग को दबाने से इटली में राजतंत्र के निरंकुश तथा रूढ़िवादी स्वरूप के विरूद्ध इटली की भावनाएं उग्र हो गई । राजतंत्र जितना रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी होता गया, इटली उतना ही उदारवादी तथा देशभक्ति से प्रेरित राष्ट्रवादी होता गया । विद्रोह दबा दिये जाने से राष्ट्रवादियों को अधिक तैयारी और मजबूत संगठन खड़ा करने का सबक मिला ।

स्थानीय विद्रोहों का सिलसिला चलता रहा । फ्रांस में 1830 की क्रान्ति होते ही इटली में एक बार फिर विद्रोह शुरू हो गया । पोप की रियासतों में उग्र प्रदर्शन हुए । परमा और

मोडेना के राज्यों से उसके शासक निकाल दिये गये । इन विद्रोहों के विरूद्ध आस्ट्रिया ने तुरन्त कठोर कार्यवाही की और अपदस्थ शासकों को पुन: अपने-अपने सिंहासनों पर आरूढ़ कराया । इस प्रकार आस्ट्रिया ने दो बार इटलीवालों की राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता प्राप्ति की अभिलाषा को कुचल दिया । फिर भी इन असफल प्रयत्नों ने भविष्य की आशा जगायी । 1830 ई0 की क्रान्ति को सफलता नहीं मिली तो उसका सबसे बड़ा कारण अभी भी लोगों की राजनैतिक उद्देश्य के बारे में अनिश्चितता थी । - अब यह स्पष्ट हो गया कि बिना व्यापक संगठन और योजना के केवल स्थानीय स्तर पर विद्रोह करने से इटली में नये युग का सूत्रपात असम्भव है । 1820 ई0 और 1830 ई0 के विद्रोहों की असफलता से इटली के नेताओं को यह भी ज्ञात हो गया कि जब तक आस्ट्रिया के आधिपत्य का अन्त नहीं जाता जब तक उनके स्वतंत्रता और एकता के प्रयत्न निरर्थक होंगे । मेटरनिक के प्रभाव के कारण इटली में राष्ट्रीयता और उदारवाद की विजय लगभग असम्भव थी ।

4.5.4 लेखकों के प्रयास:

इटली के पुनर्जागरण के इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तत्वों के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में लेखकों, दार्शनिकों, तथा आलोचकों का योगदान भी सराहनीय रहा ।

1821 ई0 में ही फॉस्कोल तथा रासेटी नामक महान् लेखकों को उनकी देश भक्ति की भावनाओं के कारण देश निकाला दे दिया गया था । 1832 ई0 में सिल्वियों पोलिको ने आस्ट्रिया के जेलखानों का दस वर्षीय वृतान्त ' 'ल मि प्रिजियोनी' ' नामक पत्रिका में लिखा । उसका प्रभाव इटली पर बहुत अधिक पड़ा । इटलीवासियों को इस लेख से यह पक्का विश्वास हो गया कि अत्याचारी आस्ट्रिया से इटली को मुक्त कराना आवश्यक है । 1843 ई0 में जियोबर्ती ने अपनी पुस्तक ' 'इटली की नैतिक और नागरिक श्रेष्ठता' ' में इटली के राज्यों के संघ की वकालात की थी । वह चाहता था आस्ट्रिया को इटली से निकालने के बाद पोप की अध्यक्षता में इटालियन राज्यों का एक संघ बने । कुछ ऐसे भी लेखक थे जिनका विचार था कि सारे राज्यों का सार्डीनिया में विलय हो जाय, तो एक शक्तिशाली और संगठित राजतंत्र के रूप में इटली का प्रादुर्भाव निश्चित है ।

4.5.5 मेजिनी और युवा इटली:

1815 ई0 से 1831 ई0 तक इटली की एकता के लिए जो भी प्रयत्न हुए सब असफल रहे । आस्ट्रिया की शक्ति के सामने इटली के देशभक्तों को हारना पड़ा । इसी समय इटली में एक महान विभूति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने इटली के राष्ट्रीय जीवन में नई चेतना जागृत की । यह था इटली के आन्दोलन का पैगम्बर, जोसेफ मेजिनी । वह स्वप्न देखा करता था कि कभी न कभी इटली का भी उद्दार होगा । शून्य क्षितिज से मानो उसे आव्हान मिला था कि तुम्हारे ही हाथों से इटली का कल्याण होगा और तुम्हीं स्वतंत्र इटली का नेतृत्व करोगे । 1830 ई0 की क्रान्ति के पूर्व वह कार्बोनरी का सदस्य था । उसने भी क्रान्ति में भाग लिया था । क्रान्ति का दमन हो जाने पर उसे बन्दी बनाकर सैब्रोना के दुर्ग में भेज दिया गया और बाद में इटली से निष्कासित कर दिया गया । देश विदेश में घूमने के बाद वह 831 ई0 में फ्रांस पहुँचा । वहाँ

उसने ' 'युवा इटली' ' नामक एक संस्था की स्थापना की, जिसने इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र ही कार्बोनरी का स्थान ले लिया । मेजिनी का विश्वास था कि इटली के नव युवकों में, प्राचीन गौरव और देशप्रेम की भावना भरकर उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संगठित करना चाहिये । मेजिनी ने कहा था, ' 'यदि समाज में क्रान्ति लानी है, तो नेतृत्व नवयुवकों के हाथ में दे दो; युवक-समाज के हृदयोंदयों में असीम शक्ति छिपी होती है । ' 'मेजिनी के दिमाग में संयुक्त इटली का स्वरूप जितना स्पष्ट और निश्चित था उतना अन्य किसी व्यक्ति के दिमाग में नहीं था । उसका उद्देश्य था, इटली के लोगों को शिक्षित कर यह अनुभव करवाना कि इटली एक राष्ट्र है । 1835 ई0 में मेजिनी ने लिखा था, ' 'हमारी आबादी लगभग 12 करोड़ है और प्राचीन काल से लोग हमें इटली की जनता पुकारते चले आ रहे हैं हमारे देश की सीमाएं प्राकृतिक हैं और बिल्कुल स्पष्ट हैं ।..... हम एक ही भाषा बोलते हैं । हमारा धर्म एक है, शिष्टाचार एक है, आदतें एक हैं । हमको अपनी उन राजनैतिक, वैज्ञानिक और कला परम्पराओं पर अभिमान है, जो यूरोप के इतिहास को अलंकृत करती हैं ।..... किन्तु न हमारे पास राष्ट्रीय झंडा है और न कोई राजनैतिक नाम है ।... नही यूरोपीय राज्यों में हमारी कोई प्रतिष्ठा है ।... सभी राज्य परस्पर स्वतंत्र हैं । हमारे आर्थिक हित छिन्न-भिन्न हो रहे हैं ।.. हमें किसी तरह की कोई आजादी नहीं, जो भावनाएं हमारे अन्दर उबल रही हैं, उनको प्रकट करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है । इन सब का कारण है कि विदेशी लोग हमें गुलाम बना रहे हैं ।' '

- मेजिनी ने युवा इटली के माध्यम से इटली की जनता को तीन नारे दिये, परमात्मा में विश्वास रखो, सब भाइयों को एक साथ मिलाओ और इटली को मुक्त करो । उसके उद्देश्य स्पष्ट थे- इटली की एकता और स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा स्वतंत्रता, समानता और जन-कल्याण पर आधारित राज्य की स्थापना ।

युवा इटली के प्रत्येक सदस्य को यह याद दिलाया जाता था कि वह इटली के देशभक्तों और शहीदों को कभी नहीं भूले । उनको शिक्षा दी जाती थी कि इटली का पुराना गौरव क्या था और मौजूदा शौचनीय अवस्था क्यों है? युवा इटली के सदस्य यह जान चुके थे कि जब कोई इटलीवासी किसी अन्य स्वतंत्र देश के स्वतंत्र नागरिक के समक्ष आँख मिलाने का साहस करता है तो शर्म के कारण उसका सिर झुक जाता है ।

मेजिनी के प्रयासों से उसके पास ऐसे नवयुवक एकत्र हो गये, जिनमें देशभक्ति का अपार जोश था और जो इटली की एकता के लिए कुछ भी करने को तैयार थे । उसने युवकों को सैनिक प्रशिक्षण दिया और स्थान-स्थान पर इसकी शाखाएं खोली । दो वर्ष में ही इसके सदस्यों की संख्या लगभग साठ हजार हो गयी थी । अब इटली के युवक एक नई आशा के साथ आगे बढ़ने लगे । राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए सम्पूर्ण इटली में एक शक्तिशाली जनमत तैयार हो गया । निसंदेह इटली का स्वतंत्रता-संग्राम एक नये युग में प्रवेश कर चुका था ।

मेजिनी के प्रयत्न से 1849 ई0 में रोम में गणतंत्र की स्थापना हुई, मगर कुछ समय पश्चात् ही फ्रांस की सेनाओं ने रोम में पोप को पुन: सत्तारूढ़ कर दिया । यद्यपि मेजिनी अपने उद्देश्य में असफल रहा किन्तु वह इससे निराश नहीं हुआ । वह कहा करता था, ' 'नये विचार तभी फलते-फूलते हैं, जब शहीदों के खून से उनका सिंचन किया जाए ।' '

इटली के इतिहास में मेजिनी का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उसने इस बात को समझा कि इटली का एकीकरण का कार्य पूरा हो सकता है । अपना यह विश्वास उसने कई लेखों से जनता तक पहुंचाया। इंग्लैण्ड और फ्रांस में भटकता मेजिनी लगातार लिखता रहा तथा लेनिन की तरह विदेशों से अपने देशवासियों को सम्बोधित एवं प्रेरित करता रहा । युवा इटली भी एक तरह की गुप्त संस्था ही थी क्योंकि उसे स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की इजाजत नहीं थी, लेकिन वह कार्बोनरी की तरह अस्पष्ट विचारों वाली संस्था नहीं थी । युवा इटली के पास इटली के भविष्य की कल्पना थी और उसे प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित कार्यक्रम था । यंग इटली की प्रेरणास्पद भूमिका का प्रमाण इसी से मिलता है कि सारी दुनिया के राष्ट्रीय आन्दोलनों में इस तरह की संस्थाएं शुरू हुई, जैसे भारत में यंग-बंगला, तुर्की में यंग-तुर्की आदि ।

वास्तव में मेजिनी ने इटली के एकीकरण की आधारशिला रखी और इटली के लोगों में देशप्रेम, त्याग और बलिदान के विचार उत्पन्न किये । इसलिए साउथ गेट ने उसका मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ' 'यह मेजिनी ही था, जिसने अपने देशवासियों में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न की । यद्यपि वह कावूर की भांति की कूटनीतिज्ञ और गैरीबाल्डी की भांति सेनानायक नहीं था, परन्तु वह एक कवि, आदर्शवादी विचारक और क्रान्ति का अग्रदूत था ।' '

4.5.6 उदार राजतंत्रवादी:

युवा-इटली के अतिरिक्त भी कुछ अन्य देशभक्त इटली की स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहे थे । कुछ देशभक्त उदारवादी राजतंत्र के माध्यम से इटली को स्वतंत्र करना चाहते थे । वे सार्डीनिया-पीडमान्ट के शासक चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में इटली को विदेशी सत्ता से मुक्त कराना चाहते थे । यद्यपि सार्डीनिया का राज्य पहले प्रतिक्रियावादी ही था किन्तु शनैः-शनैः चार्ल्स एल्बर्ट के समय उसकी नीति में परिवर्तन आ गया तथा उसने राज्य में अनेक आर्थिक और सैनिक सुधार किये और यह घोषणा की, ' 'जब समय आयेगा तक मेरा जीवन, मेरा घन, मेरा सर्वस्व इटली की वेदी पर बलिदान किया जायेगा । " इस घोषणा से कई राष्ट्रवादियों को यह विश्वास हो गया कि इटली की स्वाधीनता तथा एकीकरण का सच्चा नेतृत्व पीडमान्ट का शासक ही करेगा । चार्ल्स एल्बर्ट के अस्थिर चरित्र के बावजूद सार्डीनिया पीडमान्ट के निर्माण में चार्ल्स की देन सराहनीय है ।

4.5.7 पोप की उदारवादी नीति:

1846 में पोप ग्रेगरी 16 वें का देहावसान हो गया और उसके स्थान पर पायस नवम् पोप बना । पोप पायस नवम् दयालु और उदार प्रवृत्ति का था । बहुत दिनों बाद एक ऐसा व्यक्ति पोप हुआ था, जो अपने चरित्र और स्वभाव से लोगों को नेतृत्व प्रदान कर सकता था । उसे इटली में परिवर्तन चाहने वालों से सहानुभूति थी । उसने स्वयं ही पहल की । उसकी रियासतों में राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये और प्रशासन में कई तरह के सुधार किये गये । उसके उदारवादी प्रशासन का प्रभाव पोप के राज्यों तथा टस्कनी पर पड़ना प्रारम्भ हो गया । इससे मेटरनिख भयभीत हो उठा । आस्ट्रिया की सेना पोप के नगर फरेरा में घुस गयी तथा पोप पर दबाव डालने का प्रयास करने लगी । पोप ने इसे स्वीकार नहीं किया । कैथोलिक जगत

का ध्यान पोप ने आकर्षित किया । चार्ल्स एल्बर्ट ने पोप की सहायतार्थ सेना भेजी । यूरोपीय कैथोलिकों के विरोध से मेटरनिख घबरा गया । उसने अपनी सेना हटा ली । यह मेटरनिख की पहली राजनैतिक हार थी ।

4.5.8 1848 की क्रान्ति और इटली:

1848 ई0 में फ्रांस में क्रान्ति हुई तो इसका प्रभाव इटली पर भी पड़ना स्वाभाविक था । फलत: वहाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गया । इटली में 1848 में क्रान्ति का उद्देश्य उदारवादी आर्थिक सुधार एवं संवैधानिक प्रशासन लागू करना तथा येनकेन प्रकारेण एकीकरण तथा स्वतंत्रता प्राप्त करना था ।

सर्वप्रथम नेपल्स और सिसली के राज्य में सुधारवादी नेताओं ने विद्रोह किया और संविधान की मांग की । अन्त में नेपल्स के शासक फर्डनेंड द्वितीय को उदारवादी संविधान स्वीकार करना पड़ा । इसके पश्चात् पीडमान्ट टस्कनी और पोप के राज्यों में भी संविधान की माँग बढ़ी और मार्च, 1848 तक इन तीनों राज्यों में वैधानिक राजतंत्र की स्थापना हो गयी । मार्च, 1848 की क्रान्ति द्वारा मेटरनिख के भागने की सूचना से इटली के लोगों में नया जोश उत्पन्न हो गया । सभी इस बात से सहमत थे कि इटली के कन्धों से आस्ट्रिया का जुआ उतार फेंका जाय । वियेना की सूचना पाकर मिलान में विद्रोह हो गया और वहाँ का वायसराय भाग गया । वहाँ के निवासियों ने आस्ट्रिया द्वारा तम्बाकू पर लगाये गये कर के विरोध में सिगरेट पीनी छोड़ दी । जो भी सिगरेट पीता दिखाई देता उस पर प्रहार किया जाता । एक प्रकार से तम्बाकू दंगे शुरू हो गये । वेनिस में भी आस्ट्रिया के शासन का अन्त हो गया और गणतंत्र की स्थापना हुई । परमा व मोडेना के शासक भी भाग गये । इस समय देश के सभी विचारों के लोग आस्ट्रिया के साथ युद्ध करके उसकी अधीनता से मुक्त होना चाहते थे । काउन्ट काबूर जो इस समय 'रिसाजीमेन्टो' नामक पत्र का सम्पादक था ने राष्ट्र के नाम एक अपील में कहा, ' 'सार्डीनिया के राज्य के लिए महान् निर्णय का अवसर आ गया है । सरकार और सम्पूर्ण राष्ट्र का केवल एक ही कर्तव्य है कि तुरन्त युद्ध छेड़ा जाय ।' ' सार्डीनिया के सम्राट चार्ल्स एल्बर्ट ने भी इस अपील को पढ़ा । उसको लगा कि मानो उसका राजवंश के सामने एक महान् ऐतिहासिक दायित्व है । उसने 23 मार्च, 1848 को आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । पोप और नेपल्स के शासक फर्डीनेंड को वहाँ की जनता ने मजबूर कर दिया कि वे इटली के मुक्ति संग्राम में भाग लें । यह उल्लेखनीय है कि अब तक का इटली का संघर्ष विद्रोहों और आन्दोलनों तक सीमित था, किन्तु अब वह राष्ट्रीय युद्ध का रूप धारण करता प्रतीत हो रहा था । स्थान-स्थान पर आस्ट्रिया को पराजित होना पड़ा । दुर्भाग्यवश, इटली की एकता की यह लहर अल्पकालीन सिद्ध हुई । पोप कैथोलिक के विरोध से डरकर पीछे हट गया । फर्डीनेंड ने आन्तरिक उपद्रव के बहाने अपनी सेनाएं हटा ली । अब चार्ल्स -युद्ध में अकेला पड़ गया और उसे आस्ट्रिया की शर्तो पर आत्मसमर्पण करना पड़ा । फलस्वरूप लोम्बार्डी और वेनीशिया पर आस्ट्रिया का पुन: अधिकार हो गया ।

इन्हीं दिनों मेजिनी पुन: लौटकर इटली आ गया था । चार्ल्स एल्बर्ट की असफलता से मध्यमार्गी राजतंत्र दल की योजनाएं विफल हो गयी । अब उग्र गणतंत्रवादी दल राष्ट्रीय

आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा । मेजिनी इस दल का नेता था । उसने कहा,- ' ' चार्ल्स एल्बर्ट कमजोर निकला और पोप पायस नवम् अस्थिर सिद्ध हुआ। राजाओं द्वारा स्वतंत्रता युद्ध समाप्त किया जा चुका है, अब सर्वसाधारण द्वारा स्वतंत्रता संग्राम आरम्भ किया जाना चाहिए । " फरवरी 1849 में मेजिनी के नेतृत्व में रोम में गणतंत्र की स्थापना की गयी । पोप का साम्राज्य समाप्त हो गया और स्वयं पोप ने नेपल्स में स्थित गेटा में जाकर शरण लेनी पड़ी । टस्कनी में भी गणतंत्र की स्थापना हो गयी और वहाँ के शासक लिओपोल्ड को भागना पड़ा । किन्तु सम्पूर्ण इटली का भाग्य तो पीडमॉन्ट पर आधारित था । पीडमान्ट के शासक चार्ल्स एल्बर्ट ने राजतंत्रवादियों के दबाव के कारण पुन: आस्ट्रिया के विरूद्ध संघर्ष आरंभ किया । किन्तु 23 मार्च 1849 को उसकी सेनाएं नोवारा नाम स्थान पर हार गयी । इस हार के फलस्वरूप चार्ल्स ने सिंहासन त्याग दिया और उसका पुत्र विक्टर एमेनुअल द्वितीय पीडमान्ट का शासक बना । उसे आस्ट्रिया से संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार लोम्बार्डी पर आस्टिया का अधिकार हो गया । किन्तु आस्ट्रिया के कहने पर उसने पीडमान्ट का संविधान रद्द नहीं किया ।

नोवारा के युद्ध के बाद इटली में सर्वत्र प्रतिक्रिया आरंभ हुई । नेपल्स व सिसली में फर्डिनेंड ने पुन: अपनी शक्ति स्थापित कर ली । टस्कनी पर भी लिओपोल्ड का अधिकार हो गया । यद्यपि रोम का पतन हो चुका था, किन्तु लुई नेपोलियन की मदद से पोप को पुन: सत्तारूढ़ कर दिया गया । अगस्त, 1849 ई0 में वेनिस पर भी आस्ट्रिया का अधिकार हो गया । अन्तत: इटली में आस्ट्रिया का साम्राज्य छा गया । मेजिनी और गैरीबाल्डी को देश छोड़कर भागना पड़ा । इस प्रकार एकता और स्वतंत्रता का यह प्रयास विफल हो गया । केटलबी ने सही लिखा है,' ' " 1815 से 1850 तक इटली का इतिहास घरेलू फूट, विदेशी आधिपत्य एवं विफल संघर्ष का इतिहास था । "

यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन और गणतंत्रीय प्रयत्न विफल हुए, फिर भी इस विफलता में भी सफलता के बीज मौजूद थे । इस संघर्ष के पश्चात स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व पीडमान्ट के राजवंश को प्राप्त हुआ। विक्टर एमेनुअल ने तिरंगे को ऊँचा उठाये रखने का आश्वासन दिया । सभी देशभक्तों को विश्वास हो गया कि पीडमान्ट राज्य ही इटली को मुक्त करा सकता है ।

4.6 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न:

सारांश-

जर्मनी की भाँति इटली भी अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । नेपोलियन महान् ने इटली के लिए जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष किया था उस पर वियेना कांग्रेस ने पानी फेर दिया था जिससे इटली के एकीकरण का मार्ग दुष्कर हो गया था । उसके एकीकरण के मार्ग में कई कठिनाइयाँ थीं जिनमें प्रमुख रूप से आस्ट्रिया एवं पोप की उपस्थिति तथा स्वतंत्र राज्यों को संगठित करने से सम्बन्धित थीं । इटली की इन कठिनाइयों पर विजय विभिन्न तत्वों के सहयोग से सम्भव हुई। इटली के आर्थिक विकास ने राजनीतिक चेतना का मार्ग प्रशस्त किया । यूरोप के अन्य भागों की तरह 1848 ई0 में इटली में भी क्रांतिकारी विद्रोह शुरू हो गये थे और शासकों को जनहित में लोकतांत्रिक सुधार करने के लिए मजबूर किया जा चुका था । फिर

भी एकीकरण और आजादी का लक्ष्य अभी बहुत दूर था जो सार्डीनिया के नेतृत्व में साकार होना था ।

प्रश्न-

(1) मेजिनी एवं युवा इटली के बारे में आप क्या जानते हैं ।

(2) इटली के एकीकरण में कौन से तत्व सहायक रहे ।

(3) इटली के एकीकरण में विभिन्न बाधक तत्वों को रेखांकित कीजिए ।

4.7 एकीकरण यथार्थता की ओर:

इटली के एकीकरण का प्रारम्भिक चरण समाप्त हो गया था । इस सोपान में इटली को जोड़ने वाले तत्वों का ज्ञान लोगों को हो गया था । मेटरनिख का पतन हो चुका था । सारे इटली में पहली बार आन्दोलनों का स्वरूप राष्ट्रीय हो चुका था । इटली के एकीकरण में बाधक शक्तियाँ जग जाहिर हो चुकी थी । इन शक्तियों के विस्थापन में कई राष्ट्रीय नेता अपने-अपने तरीकों से लगे हुए थे । इटली का कोई एक शत्रु न था । उसे आस्ट्रिया, पोप तथा राजतंत्रों के विरूद्ध लड़ना था । गुप्त समितियों, लेखकों, तथा पिछले विद्रोहों एवं क्रान्तियों ने मिलकर इटली के स्वतंत्रता आन्दोलन का अनुप्राणित रखा । परन्तु इटली का यथार्थ में एकीकरण कैसे हो? इसके लिए कोई निश्चित योजना किसी के पास नहीं थी । यह कार्य विक्टर एमेनुअल एवं कावूर ने मिलकर किया । आगे का अध्ययन इटली के एकीकरण का यथार्थता की ओर बढ़ने का है ।

4.7.1 विक्टर एमेनुअल द्वितीय (1849-70 ई0)

विक्टर एमेनुअल एक वीर सैनिक, सच्चा देशभक्त और ईमानदार शासक था । वह यूरोप के राजनीतिक वातावरण से पूर्णत: परिचित नहीं था, तथापि वह एक समझदार राजनीतिज्ञ था । पीडमान्ट की जनता उसे 'ईमानदार राजा' कहा करती थी । मार्च, 1849 में जब विक्टर पीडमान्ट-सार्डीनिया का शासक बना, उस समय सार्डीनिया की सेना आस्ट्रिया से परास्त हो चुकी थी । अत: उसे आस्ट्रिया से संधि करनी पड़ी । आस्ट्रिया के साथ संधि के कारण सार्डीनिया की संसद में उसका विरोध बढ़ गया था । इधर आस्ट्रिया ने उस पर 1848 के संविधान को रद्द करने के लिए दबाव डाला, किन्तु विक्टर एमेनुअल ने संविधान को बनाये रखा । अगस्त, 1849 में सार्डीनिया की संसद ने उसे अस्वीकार कर दिया । विक्टर एमेनुअल ने पुन: चुनाव कराकर नयी संसद से संधि की स्वीकृति ले ली ।

विक्टर एमेनुअल को यह विश्वास था कि मध्य-मार्गी नीति अपना कर वह सार्डीनिया के नेतृत्व में इटली का एकीकरण कर सकता है । उसने इस हेतु प्रयत्न भी आरंभ कर दिये थे । वह अपने गुणों के कारण जनता में लोकप्रिय हो गया । गैरीबाल्डी जैसे गणतंत्रवादी भी उसकी प्रशंसा करते थे । इटली के सभी निर्वासित देशभक्त पीडमान्ट की ओर आकर्षित होने लगे । विक्टर एमेनुअल के भाग्य से 1850 में काउन्ट कवूर जैसा योग्य मंत्री उसे मिला, जिसकी गणना 19 वीं शताब्दी के महानतम राजनीतिज्ञों में की जाती है ।

4.7.2 कावूर (1810-61 ई0):

माउन्ट केमिलो-डी- कवूर का जन्म 1810 ई0 में ट्यूरिन के एक कुलीन परिवार में हुआ था । सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वह सेना में इंजीनियर के रूप में भर्ती हुआ । किन्तु अपने उदार विचारों के कारण उसे सेना से 1841 ई0 में त्यागपत्र देना पड़ा । 1841-1846 तक वह अपनी जमींदारी का कार्य करता रहा । इस समय में वह कई -अगर फ्रांस और इंग्लैण्ड भी गया । इंग्लैण्ड में रहकर उसने संसदीय प्रणाली को नजदीक मे देखा । उसका विश्वास इस शासन प्रणाली पर अधिक दृढ़ हो गया । वह अपने देश में भी इसी प्रकार की शासन प्रणाली स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा ।

1847 ई0 में कावूर ने इल रिसाजीमेन्टो नामक समाचार- पत्र का प्रकाशन शूरू किया । इस पत्र के माध्यम से इटली के एकीकरण की बात कही जाने लगी । 1848 ई0 में वह सार्डीनिया पीडमान्ट की प्रथम संसद का सदस्य चुना गया । उसकी योग्यता के कारण उसे 1850 में वित्त एवं उद्योग मंत्री बना दिया गया । उसका विश्वास था कि इटली के एकीकरण के लिए आर्थिक उन्नति और सैनिक शक्ति आवश्यक थी । उसकी यह भी धारणा थी कि जब तक विदेशी सहायता प्राप्त नहीं होगी, तब तक इटली स्वतंत्र नहीं हो सकता । राजनीति और शक्ति, दोनों ही आस्ट्रिया को इटली से निकालने के लिए आवश्यक थे । 1852 ई0 में डी-एज़ेग्लिओ के मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र देने पर वह प्रधानमंत्री बना । कवूर के प्रधानमंत्री नियुक्त होते ही इटली के इतिहास में एक नवीन अध्याय आरंभ होता है । अपने इस काल में उसने एक कूटनीतिज्ञ तथा अद्‌वितीय राजनीतिज्ञ होने का परिचय दिया । कवूर भी मेजिनी और गैरीबाल्डी के समान सच्चा देशभक्त था और इटली को स्वतंत्र कर उसका एकीकरण करना चाहता था । वह जानता था कि (1) इटली का एकीकरण सार्डीनिया के नेतृत्व में ही सम्भव हो सकता है, (2) एकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि इटली के राज्यों को आस्ट्रिया से मुक्त कराया जाय और (3) आस्ट्रिया से मुक्ति-प्राप्त करने के लिए विदेशी सहायता आवश्यक है ।

कवूर के उद्देश्य गैरीबाल्डी और मेजिनी के समान ही थे किन्तु उसके विचार उन दोनों से कुछ भिन्न थे । मेजिनी का मस्तिष्क कल्पनाशील और काव्यात्मक था;, कावूर का व्यावहारिक और निश्चयात्मक । कवूर उदार राजतंत्र का पोषक था । उसकी मेजिनी के गणतंत्रीय विचारों और क्रान्तिकारी साधनों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी । केटलबी ने लिखा है, ' 'यह कवूर के महान् मस्तिष्क का कार्य था, जिसने मेजिनी की प्रेरणा को एक प्रबल कूटनीतिक शक्ति के रूप में गतिमान बनाया तथा गैरीबाल्डी की तलवार का एक राष्ट्रीय अस्त्र के रूप में प्रयोग किया । " वास्तव में कवूर के बिना मेजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निरर्थक होती । कवूर ने इन दोनों विचारों में सामन्जस्य स्थापित किया । कवूर की योजना थी कि आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकाल फैंकने के लिए किसी यूरोपीय महाशक्ति की सहानुभूति प्राप्त करना आवश्यक है । एक बार उसने कहा भी था, ' 'हम चाहें न चाहें हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है ।' '

कवूर का यह विश्वास था कि यदि सार्डीनिया-पीडमान्ट को इटली के एकीकरण का नेतृत्व करना है, तो उसे आर्थिक और सैनिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाना होगा । अत: उसने इस नीति को अपने राज्य में अपनाया ।

4.7.2.1 कवूर की गृह-नीति:

कवूर ने राज्य की आर्थिक उन्नति के लिए व्यापार-वाणिज्य के विकास पर विशेष ध्यान दिया । उसने मुक्त व्यापार नीति अपना कर विदेश-व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन दिया । यातायात की सुविधाओं का विस्तार किया और बैंकों की स्थापना की । सहकारी समितियाँ खोली तथा कृषि की उन्नति के लिए विभिन्न संस्थाऐं स्थापित की । कवूर ने इंजीनियरी की शिक्षा प्राप्त की, व्यवसाय पत्रकारिता अपनाया और जीवन-राजनीति में विलीन कर दिया । वह हर समस्या पर तकनीकी विशेषज्ञ की भांति विचार करता था ।

कवूर ने आर्थिक सुधारों की दिशा में एक बड़ा कदम गिरजाघरों की भूमि पर कर लगाकर उठाया । उन्हें राजनीतिक नियंत्रण मे लेने की चेष्टा की । कैथोलिक ल इटली की एकता में बाधक थे, अत: चर्च के अनेक विशेषाधिकार छीन लिये ।

आर्थिक सुधारों के अतिरिक्त उसने सेना की ओर भी ध्यान दिया । जनरल ला-मोरमोरा को उसने सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया । 90 हजार सैनिकों की उसने एक सुसज्जित सेना तैयार की । राज्य की सीमा पर दुर्ग बनवाये । जल-सेना की ओर भी उसे ध्यान दिया । इस बढ़े हु ए खर्चो के समाधान के लिए उसने करों में वृद्धि की ।

कवूर अपनी गृहनीति:

इटली के एकीकरण के लिए आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्त होना, तथा पीडमान्ट के शासक की अध्यक्षता में उसे संगठित करना, काबूर की विदेश नीति का उद्देश्य था । वह मेजिनी के इस विचार से सहमत ही था कि अकेला इटली बिना किसी बाहरी सहायता के आस्टिया को बाहर धकेल देगा । अत: वह किसी यूरोपीय शक्ति की मदद की तलाश में था । वह बिस्मार्क की भांति यथार्थवादी राजनीति में विश्वास रखता था । राज्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर वह किसी भी माध्यम और नीति को अपना सकता था, बशर्ते उससे राज्य का हित हो । वह राजनीति में हिंसा को अनिवार्य शस्त्र मानता था । इस प्रकार उसकी विदेशनीति युद्ध और सैन्यवाद पर आधारित थी । उसे यह भी ज्ञान था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस ही उसके सहायक हो सकते थे । इंग्लैण्ड की इटली के प्रति सहानुभूति अवश्य थी किन्तु उससे सक्रिय मदद की आशा उसे नहीं थी । दूसरी ओर फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय महत्वाकांक्षी, साहसिक और राष्ट्रीयता का समर्थक था । फ्रांस की सेना भी यूरोप में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी । अत: कवूर ने नेपोलियन तृतीय की सहायता पाने का प्रयत्न किया क्रीमिया का युद्ध और कवूर:

क्रीमिया के युद्ध ने कवूर को इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ सहयोग करने और उनकी मित्रता के लाभ उठाने का अवसर दे दिया । पूर्वी-समस्या के उलझ जाने के कारण काला सागर के तट पर क्रीमिया का युद्ध 1854 ई0 में छिड़ गया था । इस युद्ध में इंग्लैण्ड और फ्रांस ने रूस के विरूद्ध तुर्की की मदद की थी । दूरदर्शी कवूर ने यहाँ एक अवसर देखा । रूस के विरूद्ध

लड़ती हुई, इंग्लैण्ड और फ्रांस की सेनाओं की मदद के लिए, कावूर ने जनवरी 1854 ई0 में सहायता देने का वचन दिया । अप्रैल 1854 ई0 तक 18,000 इटालियन सैनिक क्रीमिया पहुँच गये, जिससे मित्र राष्ट्रों को काफी प्रोत्साहन मिला । यह स्मरण रहे कि इस समय उदारवादियों ने कवूर की नीति का विरोध किया था क्योंकि उसने अप्रत्यक्ष रूप से निरंकुश तुर्की मदद की थी परन्तु विक्टर एमेनुअल ने उसकी नीति का अनुमोदन किया । कवूर की यद्‌यपि पूर्वी-समस्या में कोई रूचि नहीं थी, फिर भी वह युद्ध में शामिल क्यों हुआ ? वह चाहता था कि सार्डीनिया की यूरोपीय राज्यों में गणना होने लगे और इटली के एकीकरण का प्रश्न यूरोपीय शक्तियों के बीच कूटनीतिक प्रश्न बन जाय । वह यह भी चाहता था कि कम से कम एक बड़ी यूरोपीय शक्ति उसके पक्ष में हो जाय । कावूर ने यह राजनैतिक जुआ इसलिए खेला था कि उसे फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय की सहानुभूति का विश्वास था । यह भी उल्लेखनीय है कि कावूर ने इंग्लैण्ड और फ्रांस की रूस के विरूद्ध सहायता करके जो जुआ खेला था, उसमें न तो कोई शर्त थी, न उसमें कोई गुप्त रहस्य था और न किसी ओर से कोई गारन्टी थी । क्रीमिया के इस युद्ध में सार्डीनिया की सेना ने वीरतापूर्ण प्रदर्शन किया । युद्ध-समाप्ति के पश्चात् पैरिस में सम्मेलन (मार्च, 1856) हुआ। यद्‌यपि सार्डीनिया को आमन्त्रित करने का आस्ट्रिया ने विरोध किया किन्तु इंग्लैण्ड और फ्रांस ने उसके विरोध के बावजूद सार्डीनिया को सम्मेलन में आमन्त्रित किया । पैरिस में इग्लैण्ड, फ्रांस, रूस तथा आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के साथ कावूर को भी बराबर की स्थिति में भाग लेने का अवसर मिला । इस अवसर पर फ्रांस के विदेश मंत्री वैलेवस्की ने कवूर से कहा था, ' 'तुम इतने चतुर हो कि तुमने ऐसे मामले में भी प्रवेश पा लिया, जिससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है । " उसने सम्मेलन के समक्ष इटली की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया और आस्ट्रिया को उसके लिए दोषी ठहराया । कवूर ने पैरिस के शान्ति सम्मेलन में यह बात स्पष्ट रूप से बताई कि जिन बातों का प्रभाव इटली पर पड़ता है उन बातों का सार्डीनिया-पीडमान्ट पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता अर्थात् इटली के प्रश्न को यूरोपीय प्रश्न बना दिया । पैरिस सम्मेलन में उसने एक प्रकार से नैतिक विजय प्राप्त की और उसके कारण सार्डीनिया पीडमान्ट में ही नहीं, सम्पूर्ण इटली में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी । इस प्रकार क्रीमिया का युद्ध काश के लिए देव-प्रदत्त सुअवसर साबित हुआ। इसलिए यह कहा जाता है कि 'क्रीमिया के कीचड़ से इटली का जन्म हुआ'

पैरिस सम्मेलन के पश्चात् आस्ट्रिया ने इटली के प्रति उदारवादी और समझौतावादी नीति अपनायी । लोम्बार्डी और वेनीशिया में अपने शासन की कठोरता में कमी कर दी तथा निर्वासित क्रान्तिकारियों की सम्पत्ति जब्त करने के आदेश वापस ले लिये । सम्राट फ्रांसिस जोसेफ ने जनवरी, 1857 में इटली के प्रान्तों की यात्रा की और अपने भाई मेक्सीमिलियन को, जो उदारता की नीति का समर्थक था, लोम्बार्डी-वेनीशिया का गवर्नर नियुक्त किया । किन्तु इससे इटली के देश भक्तों का विरोध कम नहीं हुआ। वेनिश के निर्वासित नेता मानिन ने इस नीति के विषय में कहा था, ' 'हम नहीं चाहते कि आस्ट्रिया अपनी इटली सम्बन्धी नीति में सुधार करें, बल्कि यह चाहते हैं ' 'कि वह इटली से निकल जाय । "

4.7.4 नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति:

कवूर ने भावी स्वातंत्रय-संग्राम की रूपरेखा बना ली थी । किंतु रूपरेखा को साकार करने के लिए किसी विदेशी सहायता को प्राप्त करना अपरिहार्य हो गया था । इस हेतु कवूर के सामने दो राज्य थे-इंग्लैण्ड और फ्रांस । उसे यह शीघ्र ही मालूम हो गया कि ब्रिटिश जनता में तथा पामर्स्टन, गलेड्स्टन तथा रसेल जैसे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों में इटली के साथ सहानुभूति होते हुए भी इंग्लैण्ड से किसी सक्रिय सहायता की आशा नहीं हो सकती । इसके विपरीत नेपोलियन की राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम होने के कारण उससे सहायता प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी । कवूर नेपोलियन से सन्धि करने का उपयुक्त अवसर देख रहा था परन्तु इसी बीच आर्सिनी काण्ड हो गया ।

4.7.4.1 ऑर्सिनी काण्ड:

1858 ई0 में मेजिनी के गणतंत्रवादी शिष्य ऑर्सिनी ने नेपोलियन तृतीय की हत्या का प्रयास किया तो कवूर की सारी योजनाओं पर तुषारापात हो गया । यह 1800 ई0 की दुर्घटना की पुनरावृत्ति थी और नेपोलियन की भांति ही नेपोलियन तृतीय भी बाल-बाल बचा गया था, यद्यपि उसके कई अंग-रक्षक मारे गये थे । कुछ दिनों तक पैरिस और ट्यूरिन के राजदरबारों के बीच सम्बन्धों में तनाव आ गया था । फ्रांस की सरकार इंग्लैण्ड से नाराज हो गयी क्योंकि बाद में पता चला कि इंग्लैण्ड मे ही नेपोलियन तृतीय को मारने की योजना बनायी गयी थी । कवूर को अत्यन्त जटिल स्थिति का सामना करना पड़ा क्योंकि वह फ्रांस को नाराज नहीं करना चाहता था । उसने आर्सिनी के कार्य की आलोचना की और नेपोलियन की इच्छानुसार समाचार-पत्रों पर कठोर प्रतिबंध लगाये । किंतु यह आश्चर्य की बात है कि आर्सिनी द्वारा जेल से लिखे गये एक पत्र का जिसमें फ्रांस के सम्राट से इटली को स्वतंत्रता दिलाने की प्रार्थना की थी, नेपोलियन तृतीय पर बहुत प्रभाव पड़ा ।

4.7.4.2 प्लोम्बियर्स का समझोता:

सम्राट नेपोलियन तृतीय लगभग एक माह के लिए सार्डीनिया की सीमा के निकट छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिए ठहरा हुआ था । कावूर बिना किसी औपचारिक निमन्त्रण के प्लोम्बियर्स जा पहुँचा । कवूर और नेपोलियन की भेंट के परिणामस्वरूप फ्रांस तथा सार्डीनिया के बीच एक- समझौता हुआ । इस समझौते में निम्नलिखित निर्णय लिये गये-

(1) नेपोलियन ने वचन दिया कि आस्ट्रिया को इटली से निकालने के लिए सार्डीनिया और आस्ट्रिया के बीच युद्ध होने पर फ्रांस दो लाख सैनिक पीडमान्ट की सहायता के लिए भेजेगा ।

(2) आस्ट्रिया को बाहर निकालने के बाद लोम्बार्डी, वेनीशिया और कुछ अन्य भाग सार्डीनिया के राज्य में सम्मिलित कर दिये जायेंगे, जिससे इसकी सीमा आल्पस से एड्रियाटिक तक पहुँच सके ।

(3) नेपोलियन की सहायता के बदले में कवूर ने सेवाय और नीस के भाग फ्रांस को देने का आश्वासन दिया ।

(4) आस्त्रिया और टस्कनी को मिलाकर इटली में एक नया राज्य बनाने और प्रिन्स जेरोम बोनापार्ट को उस राज्य का शासक बनाने का निश्चय हुआ।

(5) नेपल्स और सिसली (दोनों) तथा पोप के राज्यों को पूर्ववत् बनाये रखने का भी निर्णय किया गया ।

(6) फ्रांस ओर सार्डीनिया की मित्रता को मजबूत बनाये रखने के लिए विक्टर एमेनुअल की पुत्री क्लोथिडे का विवाह नेपोलियन के चचेरे भाई प्रिन्स जेरोम बोनापार्ट के साथ होना निश्चित हुआ।

इस प्रकार इटली को चार राज्यों में विभाजित करने और उनका एक संघ बनाने की योजना बनायी गयी । कावूर नहीं चाहता था कि इटली के चार टुकड़े किये जायें । फिर प्रश्न यह उठता है कि कवूर ने इसे स्वीकार क्यों किया? वह पूर्व परिस्थितियों से शिक्षा ले चुका था । 1848-49 की घटनाएं उसके सम्मुख थी । कस्टीजा और नोवेरा की घटनाओं ने प्रमाणित कर दिया था कि अकेला इटली आस्ट्रिया को बाहर नहीं खदेड़ सकता है । कवूर को 1856 के पैरिस सम्मेलन में यह स्पष्ट ही गया था कि आस्ट्रिया बिना युद्ध के इटली पर अपना अधिकार नहीं छोड़ेगा । इसलिए इटली के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करना अनिवार्य था और इस सहायता के लिए काई भी कीमत ज्यादा नहीं थी । वैसे तो कवूर इंग्लैण्ड की सहायता चाहता था । परन्तु इंग्लैण्ड आस्ट्रिया की शक्ति तथा साम्राज्य का समर्थक था क्योंकि इंग्लैण्ड फ्रांस और रूस पर अंकुश रखने के लिए आस्ट्रिया को शक्तिशाली बनाये रखना चाहता था । इंग्लैण्ड इटली के एकीकरण का परिणाम समझता था- विजयी नेपोलियन तृतीय, परास्त आस्ट्रिया तथा शक्तिशाली संयुक्त इटली । ऐसी स्थिति में कवूर के लिए यह संतोष की बात हो सकती थी कि इंग्लैण्ड को तटस्थ रख सके और वह इसमें सफल हुआ। अब कवूर को फ्रांस ही ऐसा देश नजर आ रहा था, जो इटली की सहायता को तैयार था ।

एक प्रश्न और नेपोलियन तृतीय ने इटली के एकीकरण में क्यों रूचि व्यक्त की? यह स्मरण रहे कि पैरिस सम्मेलन के समय कवूर ने इटली की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति नेपोलियन की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी । नेपोलियन कई कारणों से राष्ट्रीय आन्दोलन में सहायक होना चाहता था । वह पहले कार्बोनरी संस्था का सदस्य रह चुका था उसने इटली के स्वतंत्रता के संघर्ष में भी भाग लिया था । इसके अतिरिक्त वह दलित राष्ट्रों की राष्ट्रीयता का भी मसीहा होने का भी दावा करता था । उसका यह समीकरण भी था कि सार्डीनिया की सहायता करके वह इटली में आस्ट्रिया के प्रभुत्व को नष्ट कर सकेगा और 1815 में उसके वंश एवं फ्रांस का अपमान करने वाले शत्रु से प्रतिशोध भी ले सकेगा । उसे नीस और सेवाय के प्रदेश प्राप्त करने का भी वचन समझौते में मिल चुका था । संक्षेप में नेपोलियन की इटली सम्बन्धी नीति का उद्देश्य फ्रांस का गौरव बढ़ाना था ।

4.7.4.3 आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध:

प्लोम्बियर्स समझोते में यह तय किया गया था कि आस्ट्रिया को भड़का कर यथाशीघ्र युद्ध आरंभ किया जाय ताकि आस्ट्रिया आक्रामक लगे तथा सार्डीनिया आत्मरक्षार्थ लड़ने वाला प्रतीत हो । कवूर ने प्लोम्बियर्स से लौटते ही युद्ध की तैयारी आरंभ कर दी । पीडमान्ट के

समाचार पत्रों में आस्ट्रिया की कटु आलोचना की जाने लगी । कावूर अपने कार्यो से आस्ट्रिया को आक्रमण करने के लिए उकसाना चाहता था । कावूर ने इटली स्थित आस्ट्रिया के मस्स और फर्रारा में विद्रोह करवा दिया, जिससे स्थिति तनावपूर्ण हो गयी । ऐसा प्रतीत होने लगा कि सार्डीनिया और आस्ट्रिया के बीच युद्ध अवश्यम्भावी है । अत: इंग्लैण्ड ने दोनों देशों के बीच समझौता कराने हेतु यूरोपीय कांग्रेस आमन्त्रित करने का सुझाव दिया । आस्ट्रिया ने यह प्रस्ताव इस शर्त पर स्वीकार किया कि कांग्रेस से पूर्व सार्डीनिया का सैन्य-वियोजन हो जाना चाहिये । जबकि सार्डीनिया चाहता था कि पहले आस्ट्रिया की सेना अपनी सीमा में चली जाये । अत: ब्रिटेन का यह प्रस्ताव असफल रहा । अन्त में ब्रिटेन ने फ्रांस के सहयोग से समस्या के समाधान का रास्ता खोजने की कोशिश की । अन्त में सार्डीनिया डस समय पूर्खता के साथ आगे बढ़ा और उसने उत्तेजित होकर सार्डीनिया को 23 अप्रैल, 1859 को एक अल्टीमेटम भेजा कि तीन दिन के भीतर वह सैन्य-वियोजन कर दे अन्यथा उसके विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया जायेगा । कवूर की सोई हुई आशाएं जग उठी । कवूर प्रसन्नता से चिल्ला उठा, ' 'पासा पलट गया है और हम इतिहास बनाने जा रहे है । " 29 अप्रैल को आस्टिया की सेनाओं ने सार्डीनिया की सीमा में प्रवेश किया और युद्ध आरंभ हो गया । इस युद्ध में विक्टर एमेनुअल ने स्वयं अपनी सेना की कमान सम्भाली । आस्ट्रिया यूरोप की नजरों में आक्रामक होने की वजह से नेपोलियन का संकोच भी समाप्त हो गया और 3 मई को फ्रांस ने भी सार्डीनिया के पक्ष में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । फ्रांस और सार्डीनिया की संयुक्त सेनाओं ने 20 मई, 30 मई, 4 जून, को क्रमश: मांटेबेलो, पोलेस्टो और मेगेन्टा में आस्ट्रिया को हराया । कुछ ही दिन बाद मिलान पर अधिकार हो गया । 24 जून को उस संयुक्त दल ने सॉलफरीनों की शानदार विजय प्राप्त की । इस हार के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया को लोम्बार्डी का प्रदेश छोड़ना पड़ा और आस्ट्रिया के सैनिकों को वेनीशिया के चार प्रसिद्ध किलों-मैन्शुआ, पेस्चीरा, वेरोना और लेग्नोना- में शरण लेनी पड़ी । उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वेनीशिया पर भी सार्डीनिया का अधिकार हो जायेगा किन्तु इसी समय नेपोलियन तृतीय ने सार्डीनिया से पूछे बिना युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी । उसके युद्ध से अलग होने के कुछ कारण थे- (1) फ्रांस को इस युद्ध में काफी हानि उठानी पड़ी थी और यदि युद्ध अधिक समय तक चलता तो और अधिक हानि की सम्भावना थी । (2) नेपोलियन ने महसूस किया कि फ्रांस की दक्षिण-पूर्वी सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना फ्रांस के लिए एक खतरा साबित हो सकता है ।

(3) फ्रांस के रोमन कैथोलिक लोग युद्ध जारी रखने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि सार्डीनिया के विजय अभियान से पोप की स्थिति खतरे में पड़ सकती थी । (4) नेपोलियन इस बात से भिज्ञ था कि पराजय के बावजूद आस्ट्रिया की सैनिक शक्ति अब भी कमजोर नहीं थी । साथ ही प्रशा भी आस्ट्रिया के पक्ष में युद्ध लड़ने की तैयारी कर रहा था । उसने सेनाओं को सीमाओं पर भेजना प्रारंभ कर दिया था । नेपोलियन दोनों की संयुक्त सेना का मुकाबला करने की स्थिति में नहीं था ।

4.7.4.4 विलाफ्रेंका की विराम संधि (11 जुलाई, 1859):

नेपोलियन तृतीय ने 11 जुलाई, 1859 को विलाफ्रेंका नामक स्थान पर आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ से भेंट करके युद्ध-विराम की शर्तें तय करली । ये शर्तें अग्र-लिखित थीं- (1) लोम्बार्डी सार्डीनिया को दे दिया जाए परन्तु वेनीशिया आस्ट्रिया के पास ही बना रहेगा । (2) मध्य इटली के राज्य परमा, मोडेना ओर टस्कनी में वहाँ के शासकों को पुन: स्थापित करने का निर्णय लिया गया । (3) पोप के अधिकार में इटली का एक संघ बनाया जायेगा और वेनीशिया उक्त इटालियन संघ का एक भाग होगा ।

विलाफ्रेंका की संधि कवूर और इटली के लोगों पर वज्रपात थी । जब उनकी आशाएं पूर्ण होने को थी उसी समय उन पर तुषारापात हो गया । इस स्थिति के बारे में लिप्सन ने सही ही लिखा है, ' 'इस देश ने विजयोल्लास का प्याला अपने होठों लगाया ही था कि वह गिरकर चकनाचूर हो गया । " इस संधि से आस्ट्रिया की पूर्ण हार के बिना ही वेनीशिया में आस्ट्रिया का अधिकार बना रहा, जो इटली के लिए द्यातक था । आहत कवूर ने सम्राट विक्टर एमेनुअल को यह सलाह दी कि वह इस संधि को न माने और अकेला ही युद्ध करे । किन्तु विक्टर एमेनुअल ने आवेश में कोई निर्णय नहीं लिया । कवूर ने त्यागपत्र दे दिया । विक्टर एमेनुअल को भी इस संधि से निराशा हुई थी । किन्तु वह यह भी महसूस कर रहा था कि वियेना की व्यवस्था द्वारा इटली पर जो आस्ट्रिया का संरक्षण स्थापित किया गया था, वह समाप्त हो चुका था । वह अपने प्रतिभाशाली मंत्री की अपेक्षा इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से देख सका, यद्यपि पीडमान्ट की- आशाएं पूरी नहीं हुई तथापि उसे लाभ अवश्य मिला था । वह यह मानता था कि, जब यूरोपीय शक्तियों ने लोम्बार्डी पर इटली का अधिकार मान लिया है, तो वेनीशिया पर भी इटली का नैतिक अधिकार एक प्रकार से स्वीकार कर लिया ।

विक्टर एमेनुअल ने आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ मिलकर 10 नवम्बर, 1859 को ज्यूरिख़ की संधि पर हस्ताक्षर किये । ज्यूरिख की संधि द्वारा विलाफ्रेंका की विराम-संधि की पुष्टि की गयी । इससे लोम्बार्डी पर पीडमान्ट का विधिवत अधिकार स्थापित हो गया और इसी के साथ इटली के एकीकरण का प्रथम चरण पूरा हुआ ।

4.7.5 मध्य-इटली का विलय:

आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध के समय सारा इटली राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत था । इसी दौरान मध्य-इटली की जनता ने भी अपने शासकों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और परमा, मोडेना और टस्कनी के शासकों को हटा दिया । इन विद्रोहों के लिए नेशनल सोसायटी (1) पहले की भूमिका तैयार कर चुकी थी । जनता ने बोलोग्ना और रोमाग्ना से पोप के प्रतिनिधियों को निकाल दिया और इन स्थानों पर अस्थायी सरकारों का गठन कर लिया । यहां के देशभक्तों ने-

(1) नेशनल सोसायटी का जन्म 1857 में हुआ था । इसके द्वारा पीडमान्ट के राजा के नेतृत्व में इटली के एकीकरण का लक्ष्य स्वीकार किया गया । गैरीबाल्डी भी इस समिति का सदस्य बनाया था । कवूर का इस सोसायटी से गुप्त सम्पर्क था और वह इसके कार्यों को प्रोत्साहन देता रहा था । इस सोसायटी का नारा था- एकता, स्वतंत्रता और विक्टर एमेनुअल ।

एक विशाल सेना भी गठित कर ली थी । इन प्रदेशों ने प्रस्ताव पास कर यह निर्णय लिया कि उनके राज्य सार्डीनिया में मिला दिये जायें । सार्डीनिया की मध्य डचियों के उस आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति थी । इसलिए विदेशी शक्तियों के रूख पर मध्य डचियों का भाग्य अवलम्बित था। इंग्लैण्ड की उदारवादी सरकार की इटली की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति थी । उसने अहस्तक्षेप की नीति को अपनाया और घोषणा की कि इटलीवासियों को अपने मामले स्वयं तय करने का अधिकार है । आस्ट्रिया और प्रशा चाहते थे कि ज्यूरिख़ की संधि के अनुसार मध्य इटली में पुराने शासकों को गद्दी पर बिठाया जाए । अत: अब सारी स्थिति फ्रांस के दृष्टिकोण पर निर्भर थी । इसी बीच जनवरी, 1860 में कावूर पुन: प्रधानमंत्री पद पर असीन हुआ और उसने नेपोलियन के साथ इस बात पर सौदा तय किया । उसने नेपोलियन को नीस और सेवाय का लालच दिया । अन्त में यह तय हुआ कि मध्य-इटली के राज्यों को सार्डीनिया में मिलाये जाने पर कोई आपत्ति नहीं करेगा, यदि उसे उसके बदले नीस और सेवाय के प्रांत मिलें । नेपोलियन ऐसा करके प्लाम्बियर्स समझौते के अंतर्गत दिये गये सहयोग का मूल्य प्राप्त करने का अभिलाषी था । इस लाभ को प्राप्त करके वह अपने देश वासियों के असंतोष को भी दूर करना चाहता था । मार्च, 1860 में मध्य इटली के राज्यों मे जनमत-संग्रह कराया गया, जो एक नया प्रयोग था । परमा, मोडेना, टस्कनी बोलोग्ना और पियाकेन्जा ने प्रचंड बहुमत से सार्डीनिया के साथ मिलने का निर्णय किया । नीस और सेवाय में भी जनता ने फ्रांस के साथ मिलने का मत दिया और वहाँ पर फ्रांस का अधिकार हो गया ।

इटली के हाथ से नीस और सेवाय निकल जाने की कटु आलोचना हुई । नीस गैरीबाल्डी की जन्मभूमि थी, अत: उसे इस घटना से भारी आघात लगा । उसने कवूर की आलोचना करते हुए कहा, ' 'तुमने मुझे अपनी ही मातृभूमि में विदेश बना दिया है । ' 'इंग्लैण्ड में सभी लोगों को फ्रांस द्वारा किया गया यह अपहरण अच्छा नहीं लगा क्योंकि इंग्लैण्ड यह नहीं चाहता था कि फ्रांस के प्रभाव में वृद्धि हों ।

कवूर की नीति के फलस्वरूप सार्डीनिया पीडमान्ट का क्षेत्रफल पहले से दुगुना हो गया था और अब वेनीशिया को छोड़कर समस्त उत्तरी इटली तथा मध्यवर्ती उचियों के एक इटालियन राज्य का निर्माण हो चुका था । सम्राट विक्टर एमेनुअल ने नवीन संघीय शासन के अन्तर्गत ट्यूरिन में संसद का उद्घाटन करते समय कहा था, ' 'अब इटलीवासियों के इटली का जन्म हुआ है ।' ' इस प्रकार यह इटली के एकीकरण 'का दूसरा चरण पूरा हो गया था ।

4.7.6 नेपल्स और सिसली का विलय:

इटली प्रायद्वीप के उत्तरी और मध्य भाग तो एक राजसत्ता के अधीन हो गये थे किन्तु अभी भी आधा प्रायद्वीप मिलना शेष था । नेपल्स, सिसली, वेनीशिया और रोम अभी इटली के बाहर थे । विलाफ्रेंका के विश्वासपात्र के बाद कावूर ने कहा था, ' 'यूरोपीय शक्तियों ने मुझे कूटनीति के द्वारा उत्तर की ओर से एकीकरण नहीं करने दिया । अब मुझे क्रान्ति का सहारा लेकर दक्षिण की ओर से इटली का एकीकरण करना होगा । " यह कावूर की नीति में परिस्थिति-जन्य परिवर्तन का द्योतक था । नेपल्स और सिसली के पिछले 40 वर्षो का इतिहास अत्याचारपूर्ण निरंकुशता का इतिहास था । मई 1859 में नेपल्स और सिसली के शासक

फर्डीनेन्ड द्वितीय की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर फ्रांसिस द्वितीय गद्दी पर बैठा । वह एक अयोग्य, अनुभवहीन और निर्बल शासक था । फ्रांसिस द्वितीय ने कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किन्तु उससे जनता का असन्तोष कम नहीं हुआ । सार्डीनिया और आस्ट्रिया युद्ध और केन्द्रीय इटली में जो विद्रोह हुए, उन सबका प्रभाव नेपल्स और सिसली पर भी पड़ा । इसके अतिरिक्त वहाँ के शासक के विदेशी होने के कारण भी भारी असंतोष था । सिसली में नेशनल सोसायटी का प्रचार कार्य तेजी से चल रहा था । सोसायटी का सचिव, ला फारीना सिसली का ही निवासी था और वह सिसली में विद्रोह करना चाहता था । मेजिनी ने भी विद्रोह को प्रोत्साहन दिया और उसके एक समर्थक फ्रांसिस्को क्रिस्पी ने विद्रोह की योजना तैयार की, किन्तु नेपल्स और सिसली के विद्रोह को सफल बनाने का श्रेय गैरीबाल्डी को जाता है ।

4.7.6.1 गैरीबाल्डी (1807-1882):

ग्यूसेप गैरीबाल्डी का जन्म 1807 में नीस नामक नगर में हुआ था । उसके पिता छोटे व्यापारिक जहाज के एक अधिकारी थे । उसके पिता चाहते थे कि गैरीबाल्डी को उच्च शिक्षा मिले । लेकिन गैरीबाल्डी का मन पढ़ने में नहीं लगा । वह केवल इतना पढ़ सका कि पुस्तकें पढ़ सके और अपनी स्वतंत्र एवं साहसिक प्रवृति को संतुष्ट कर सके । 10 वर्ष तक गैरीबाल्डी व्यापारिक जहाजों पर पर्यटन करता रहा । इस कारण उसे भू-मध्य-सागर का पर्याप्त अनुभव हो गया था । इन्हीं यात्राओं में उसका इटली के देशभक्तों ओर निवासियों से परिचय हुआ और उनके सम्पर्क से उसके मन में इटली की स्वतंत्रता की भावना जागृत हुई । वह इटली से उतना ही प्रेम करता था जितना कोई आध्यात्मिक सन्यासी ईश्वर से करता है । कुछ समय पश्चात् वह मेजिनी के सम्पर्क में आया और उसके उच्चदर्शी से प्रभावित होकर युवा इटली का सदस्य बन गया । 1833 ई0 में उसने मेजिनी द्वारा संगठित नौ-सैनिक-षड्यंत्र में भाग लिया । वह पकड़ा गया और उसे मृत्युदण्ड की सजा दी गयी लेकिन वह किसी तरह भागकर दक्षिण अमेरिका चला गया । चौदह वर्षो तक वह दक्षिण अमेरिका के क्रान्तिकारियों से सहयोग करता रहा । इस समय में उसने छापामार युद्ध का अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया, जो आगे चलकर इटली के एकीकरण के युद्धों में सहायक हुआ । 1848 की क्रान्ति सूचना पाकर वह पुन: इटली लौट आया और उसने चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में भाग लिया । इसके पश्चात् वह रोम में मेजिनी के गणतंत्र की सहायता करने पहुँचा । उसने फ्रांसिसी सेनाओं के विरूद्ध रोम की रक्षा का अन्त तक प्रयत्न किया किन्तु वह सफल न हो सका और किसी प्रकार बचकर टस्कनी पहुँचा । टस्कनी से वह पीडमान्ट आया और वहाँ से पुन: देश छोड़कर अमेरिका चला गया । अमेरिका में वह छह वर्ष रहा और वहाँ से काफी धन कमाकर 1854 में पुन: इटली लौट आया । इटली आने पर उसने सार्डीनिया के निकट के प्रीरा नामक टापू खरीदा और वहाँ एक स्वतंत्र कृषक के रूप में रहने लगा । 1856 में उसका कावूर से प्रथम सम्पर्क हुआ । वह काल के विचारों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने 1857 में सार्डीनिया के शासक को अपनी सेवाएं अर्पित कर दी । गैरबाल्डी के जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि गणतंत्रवादी अब वैधानिक राजतंत्रवाद का समर्थक बन गया था । उसी के कारण सार्डीनिया के गणतंत्रवाद का समर्थक बन गया था । उसी के कारण सार्डीनिया के गणतत्रवादियों

और राजतंत्रवादियों में समझौता हो सका । केटलबी ने लिखा है, ' 'यदि यह समझौता नहीं होता और दोनों के मतभेद बने रहते तो वे एक दूसरे को नष्ट करने का प्रयत्न करते और इटली की एकता का प्रयत्न विफल हो जाता । " इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी का वास्तविक योगदान 1860 से आरंभ होता है ।

4.7.6.2 सिसली में विद्रोह:

1859 के पतझड़ में सिसली के विद्रोह का श्रीगणेश हुआ। यहाँ की जनता बूर्बो राजाओं के निरंकुश शासन के विरूद्ध थी । यहाँ के देशभक्तों ने गैरीबाल्डी से प्रार्थना की कि वह उनका नेतृत्व करें । गैरीबाल्डी उनकी सहायता के लिए तैयार हो गया । किन्तु उसने यह शर्त रखी थी कि वे इटली और विक्टर एमेनुअल के नाम पर विद्रोह करें । 4 अप्रैल, 1860 को मसीना के निकट विद्रोह हो गया । यद्यपि आरंभ में विद्रोहियों को कुछ सफलता मिली । लेकिन फ्रांसीसी सेनाओं ने इस उपद्रव को क्रूरता से दबा दिया । इस घटना के बाद गैरीबाल्डी सिसली की मदद को तैयार हो गया । कवूर भी सिसली वालों की मदद करना चाहता था लेकिन वह खुलेआम ऐसा नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करना अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरूद्ध था । इससे नेपल्स और सार्डीनिया के मध्य युद्ध छिड़ सकता था । सम्भव था कि यूरोपीय राज्य इसमें हस्तक्षेप करने लगते । कवूर यह भी जानता था कि उत्तरी इटली का जनमत सिसली के विद्रोह का समर्थक है । अत: वह जनता की. भावना के विरूद्ध नहीं जा सकता था । कवूर को यह सुनहरा अवसर प्रतीत हो रहा था । बाहरी तौर पर वह अपनी तटस्थता का प्रदर्शन करता रहा किन्तु गुप्तरूप से उसने गैरीबाल्डी और सिसली की मदद की । 5 मई, 1860 को गैरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार लाल कुर्ती वाले स्वयं सेवकों के साथ जेनोवा से सिसली की ओर प्रस्थान किया । 11 मई को गैरीबाल्डी सिसली द्वीप के पश्चिमी किनारे पर मार्सला पहुंच गया । वहाँ पर इंग्लैण्ड की सहायता से गैरीबाल्डी के सैनिक सिसली पर उतर गये । 15 मई को केल्टाफीमी नामक स्थान पर उसने नेपल्स की सेनाओं को परास्त किया । इसके बाद उसने पैलरमो पर अधिकार कर लिया । जून के अन्त तक सिसली पर गैरीबाल्डी का अधिकार हो गया और अपने को सिसली का अधिनायक घोषित किया । अपने अदम्य उत्साह, कौशल और राजा से असंतुष्ट जनता के अपूर्व सहयोग के कारण गैरीबाल्डी को अभूतपूर्व सफलता मिली ।

गैरीबाल्डी की शानदार सफलताओं से जो परिस्थिति बनी उसके कारण कवूर के समक्ष कई कठिनाइयाँ पैदा हो गयी । यह प्राय: निश्चित प्रतीत हो रहा था कि विजय के उत्साह से वह नेपल्स पर आक्रमण करेगा । यह भी सम्भव था कि वह और आगे बढ़ने का प्रयास करता तथा पोप की रियासतों पर आक्रमण करके रोम को लेने का प्रयत्न करता । रोम पर आक्रमण की स्थिति में -फ्रांस के हस्तक्षेप की पूर्ण सम्भावना थी । कवूर को यह आशंका थी कि गैरीबाल्डी, मेजिनी के प्रभाव के कारण, विजित प्रदेशों में गणतंत्र स्थापित न कर दे । कवूर यह चाहता था कि गैरीबाल्डी को जो सफलता मिली है वह इटली के हित में हो । वह यह नहीं चाहता था कि असमय रोम पर आक्रमण करने पर यूरोपीय शक्तियाँ विशेषकर फ्रांस और आस्ट्रिया इटली के मामलों में हस्तक्षेप करें । अत: कवूर बड़ी सावधानी से कदम उठा रहा था ।

कवूर ने गैरीबाल्डी को संदेश भेजा कि वह सिसली को उत्तरी इटली में मिला दे किन्तु गैरीबाल्डी तैयार नहीं हुआ। अब कवूर ने गैरीबाल्डी की महत्वाकांक्षाओं को नियंत्रित रखने एवं गणतंत्र के विरूद्ध जनमत तैयार करने के उद्देश्य से कुछ चुने हुए कार्यकर्ताओं को सिसली और नेपल्स भेजा । उन्होंने जनमत को नेपल्स के उत्तरी इटली के साथ मिलाये जाने के पक्ष में तैयार कर लिया । कवूर ने एडमिरल पर्सानों को भेजकर नेपल्स के जहाजी बेड़ों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया । ' 'कवूर का यह व्यवहार नैतिक नहीं था, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि परिस्थितिवश ऐसा मार्ग अपनाना पड़ा था । उसने जो कुछ भी किया उसमें उसका स्वार्थ नहीं था । ' 'कवूर ने स्वंय कहा था, ' 'यदि उन कार्यो को, जो इटली के लिए कर रहे हैं, अपने स्वार्थ के लिए करते तो अवश्य ही ठग और चोर कहे जाते ।' '

4.7.6.3 नेपल्स पर अधिकार:

थोड़ी तैयारी और संगठन के बाद गैरीबाल्डी ने अपनी सेना के साथ 19 अगस्त, 1860 को नेपल्स पर हमला कर दिया । पहले से उसकी स्थिति बेहतर थी क्योंकि उसे अपार जन-समूह का समर्थन प्राप्त था और सफलता से उसकी सेना का मनोबल ऊँचा था । लेकिन विरोध में एक लाख की सेना खड़ी थी जिसमें कुछ असंतुष्ट सैनिक भी थे । असंतुष्ट सेना हमेशा नुकसान पहुँचाती रही है । ये सैनिक गैरीबाल्डी के साथ मिलने लगे । नेपोलियन तृतीय गैरीबाल्डी की प्रगति को रोकना चाहता था, क्योंकि वह इटली को शक्तिशाली राज्य नहीं होने देना चाहता था । उसने इंग्लैण्ड को यह प्रस्ताव रखा कि आंग्ल-फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मिलकर मेसीना के तंग जल मार्ग पर गैरीबाल्डी को रोके और उसे सिसली से उत्तर की ओर न जाने दे । किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने उसे अस्वीकृत कर दिया क्योंकि वह किसी अन्य देश के मामलों में हस्तक्षेप करने को तैयार न था । इस प्रकार ब्रिटेन की सहानुभूतिपूर्ण नीति के कारण गैरीबाल्डी को नेपल्स में आगे बढ़ने का अवसर मिल गया । फ्रांस अकेला कुछ न कर सका ।

फ्रांसिस द्वितीय द्वारा गैरीबाल्डी को रोकने के प्रयत्न विफल हुए और उसके सेनापति विद्रोही हो गये । ऐसी स्थिति में शासक नेपल्स छोड़कर गेटा भाग गया । गैरीबाल्डी बिना किसी प्रतिरोध के आगे बढ़ता ही चला गया । लोगों ने उसका शानदार स्वागत किया और उसे दूसरा मसीहा माना । गैरीबाल्डी ने स्वयं को नेपल्स का अधिनायक घोषित किया और मेजिनी के समर्थक बर्तानी को राज्य का मंत्री नियुक्त किया ।

4.7.6.4 कवूर द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण:

गैरीबाल्डी का उत्साह चरम पर था । उसने घोषणा की कि अब वह वेनिश और फिर रोम पर अधिकार करेगा । उसने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि वेनिश और रोम पर आक्रमण करने से आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ युद्ध हो सकता है । वह किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार न था । गैरीबाल्डी को न तो कायर बनना पसन्द था और न ही वह विक्टर एवं कवूर की दुरंगी चाल पसन्द करता था । ' 'वह नहीं चाहता था कि इटली के देशभक्त शक्ति हथियाने के लालच में हीनता का भाव ग्रहण करे । वह जानता था कि ऐसे स्वतंत्र लोगों की इच्छाओं को सदा के लिए सब कुछ बलिदान करने को उतावले रहते हैं । " गैरीबाल्डी के इरादों

के कारण कवूर की स्थिति काफी जटिल हो गयी, किन्तु कवूर ने भी गैरीबाल्डी के प्रयत्न को विफल बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया । इसी समय कवूर ने कहा था, ' 'मुझे इटली की विदेशियों, अनिष्टकारी सिद्धान्तों (गणतंत्रवादी सिद्धान्त), पागलों (गैरीबाल्डी) से रक्षा करनी है । ' 'कवूर ने यह निश्चय किया कि गैरीबाल्डी की किसी कार्यवाही से पहले ही कुछ ठोस कदम उठा लिये जाए । पीडमान्ट की सेना द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण करा दिया जाए और इस प्रकार गैरीबाल्डी सेरोम की रक्षा की जाए ।

कवूर ने नेपोलियन की प्रतिक्रिया जानने के लिए फ्रांस के दरबार में अपने दूत भेजे । उनके द्वारा यह मालूम कराया गया कि यदि पीडमान्ट अम्ब्रिया और मार्चेस पर अधिकार कर ले तो नेपोलियन की प्रतिक्रिया क्या होगी? नेपोलियन के अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की । उसने पोप की रियासतों पर आक्रमण करने की स्वीकृति इस शर्त पर दी कि रोम पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं होना चाहिये । अब कवूर के लिए रास्ता साफ था । पोप की एक साधारण सी विरोधी चाल पर अप्रसन्न होकर उसी को युद्ध का बहाना बनाकर कावूर ने पोप की रियासतों पर 11 सितम्बर, 1860 को आक्रमण की आज्ञा दे दी । 29 सितम्बर को आम्ब्रिया और मार्चेस पर सार्डीनिया का अधिकार हो गया । इधर गैरीबाल्डी भी रोम की ओर आगे बढ़ रहा था किन्तु रास्ते में नेपल्स की सेनाओं ने उसका रास्ता रोक दिया, जिससे कई दिनों तक वह आगे नहीं बढ़ सका । कावूर ने इस समय का पूरा फायदा उठाया । दूसरी और इटली की संसद के निर्णयानुसार नेपल्स, सिसली व पोप के जीते प्रदेशों में जनमत संग्रह करवाया । अक्टूबर के अन्त तक सभी क्षेत्रों की जनता ने उत्तरी इटली के राज्य में सम्मिलित होने का निर्णय किया । इससे कवूर की स्थिति मजबूत हो गयी ।

दूसरी ओर गैरीबाल्डी फ्रांसिस द्वितीय के अधीन गैटा और केपुआ के किलों पर अधिकार नहीं कर पाया और उसे यह विश्वास हो गया कि इटली की सेना की सहायता के बिनवा सफल नहीं हो सकेगा । इसी समय विक्टर एमेनुअल स्वयं सेना लेकर नेपल्स की ओर बढ़ा । टिआनो नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और विक्टर एमेनुअल की भेंट हुई । गैरीबाल्डी ने उसको इटली के शासक के रूप में स्वीकार किया । इसके पश्चात् गैरीबाल्डी ने अपनी सेना और समस्त अधिकार इटली के शासक को समर्पित कर दिये । विक्टर एमेनुअल ने 7 नवम्बर, 1860 को गैरीबाल्डी के साथ नेपल्स में प्रवेश किया । इसके पश्चात नेपल्स के राजमहल में विक्टर एमेनुअल को संयुक्त इटली का शासक घोषित किया गया ।

18 फरवरी, 1861 को ट्यूरिन में इटली की प्रथम संसद की बैठक हुई, जिसमें वेनीशिया और रोम को छोड़कर समस्त इटली के प्रतिनिधि थे । विक्टर एमेनुअल द्वितीय को विधिवत इटली का शासक स्वीकार किया गया । इस प्रकार सार्डीनिया का राज्य इटली का राज्य हो गया । संसद ने कवूर का यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया कि रोम इटली की राजधानी होनी चाहिये ।

4.7.6.5 गैरीबाल्डी की महानता:

इटली को मुक्त कराने में गैरीबाल्डी का योगदान अविस्मरणीय है । विक्टर एमेनुअल के इटली का राजा घोषित होने के पश्चात् गैरीबाल्डी को सम्मानित करने और उपाधियाँ देने का

प्रस्ताव रखा गया । लेकिन उसने आदरपूर्वक उपाधियों और पुरस्कारों को लेने से इन्कार कर दिया । उसने कहा, ' 'देश सेवा स्वयं एक पुरस्कार है, मुझे कोई दूसरी चीज नहीं चाहिये । स्वतंत्र इटली अमर हो ।' ' इटली के इस महान योद्धा के वीरतापूर्ण कार्यो का यही यशस्वी अन्त था । वह अपने खेतों में बोने के लिए बीजों का एक थैला लेकर अपने द्वीप के-प्रीरा चला गया । जिस त्याग, देशभक्ति और वीरता का परिचय गैरीबाल्डी ने दिया उसका उदाहरण विश्व-इतिहास में मिलना कठिन है । इतिहासकार केटलबी ने लिखा है, ' 'इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि वह इटली को मुक्त कराने वाला ऐसा परमवीर था जिसने इतिहास को वीर-काव्य बना डाला, राजनीति को साहसिक खेल मात्र समझा । "

4.7.7 कवूर का मूल्यांकन:

6 जून, 1861 को कवूर की मृत्यु हो गयी और यह महान् देशभक्त सम्पूर्ण इटली का एकीकरण देखने को जीवित नहीं रहा । एलीसन फिलिप्स का यह कहना ठीक ही है, ' 'एक राष्ट्र के रूप में इटली कवूर की देन हे । " कवूर ने राष्ट्रीय मुक्ति के कार्य को दलीय भावना से मुक्त रखा, विचारहीन द्याड्यन्त्रों से रक्षा की और क्रान्ति तथा प्रतिक्रिया की चट्टानों के बीच से उसकी नौका खेकर उसे संगठित शक्ति, ध्वज, शासन और विदेशी मित्र प्रदान किये । केटलबी के इस मत से हम सहमत हैं, ' 'कवूर के बिना मेजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निहफल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते । वास्तव में कवूर के द्वारा ही इटली का एकीकरण सम्भव हुआ ।' '

कवूर एक कुशल राजनीतिज्ञ था । कवूर के इतिहास के मंच पर आने से पूर्व इटली को विदेशी प्रभाव से मुक्त करने के कई प्रयत्न हुए थे, परन्तु वे सब निकल रहे थे । कवूर प्रथम व्यक्ति था, जिसने इटली की समस्या के सभी पहलुओं को देखा । समस्त देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना तो मेजिनी, गैरीबाल्डी आदि भर चुके थे और उनमें राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की उत्कृष्ट अभिलाषा भी उत्पन्न कर दी थी, परन्तु राष्ट्रीय स्वतंत्रता का महायज्ञ कैसे सम्पन्न हो सकता था? यह वे नहीं जानते थे । गुप्त-षड़न्त्र और विद्रोह ही उनके उपाय थे । कवूर ने इन उपायों की व्यर्थता को देखा और समस्या के समाधान के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया । उसने एक कुशल राजनेता की भ भांति यह जान लिया कि इटली की समस्याओं का समाधान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, यूरोपीय कूटनीति तथा युद्ध द्वारा ही हो सकेगा ।

वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ भी था । सार्डीनिया जैसे छोटे राज्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति और सहयोग पाना एक दुष्कर कार्य था किन्तु कवूर की कूटनीति ने इसे सम्भव बनाया । क्रीमिया के युद्ध में सार्डीनिया का भाग लेना कवूर की एक कूटनीतिक पहल थी । पैरिस के शान्ति-सम्मेलन में इटली के प्रश्न को प्रस्तुत कर इसे यूरोपीय प्रश्न बना दिया । मध्य डचियों के मामले में जिस गुप्त प्रचार को कवूर ने बढ़ावा दिया, उसने उसे एक श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया । कवूर ने बड़ी बुद्धिमानी से सम्राट को सेना के साथ भेजकर गैरीबाल्डी के जोश पर अंकुश लगाया ।

4.7.8 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण:

रोम और वेनीशिया को छोड़कर इटली का एकीकरण लगभग पूर्ण हो चुका था । रोम और वेनीशिया का भाग्य अब भी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ जुड़ा था । इटली का शेष एकीकरण प्रशा के कारण हुआ । कवूर के बाद विक्टर एमेनुअल ने इन राज्यों को इटली के अधीन लाने में जल्दबाजी नहीं की । उसने धैर्य के साथ उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की । कवूर के बाद इटली की राजनीतिक अस्थिरता और खराब आर्थिक स्थिति के कारण विक्टर एमेनुअल इटली के लिए कुछ समय तक कोई कदम उठा न सका ।

4.7.8.1 वेनीशिया की प्राप्ति:

इटली के ऐसे अवसर की तलाश में था, जब वह वेनीशिया को आस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त कर सके। यह अवसर उसे 1866 ई0 में मिला । प्रशा का चांसलर बिस्मार्क आस्ट्रिया के विरूद्ध भावी युद्ध की तैयारी कर रहा था क्योंकि आस्ट्रिया इटली के एकीकरण के समान जर्मनी के एकीकरण में भी बाधक था । बिस्मार्क आस्ट्रिया के विरूद्ध इटली का सहयोग प्राप्त करना चाहता था । अप्रैल, 1866 में दोनों देशों के बीच एक संधि हुई जिसके अनुसार प्रशा युद्ध में इटली का सहयोग प्राप्त करना चाहता था । अप्रैल, 1866 को प्रशा ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । विक्टर एमेनुअल ने दूरदर्शिता दिखायी और आस्ट्रिया की सेनाएं बंट गयी । इटली ने युद्ध में बड़े उत्साह से भाग लिया था किन्तु उसे आस्ट्रिया से कई स्थानों पर हारना पड़ा । इसके विपरीत 3 जुलाई, 1866 को प्रशा ने सेडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया को निर्णायक पराजय देने में सफलता प्राप्त की । बिस्मार्क ने प्राग की संधि द्वारा वेनीशिया इटली को दिलवा दिया । जनमत संग्रह के द्वारा वेनीशिया की जनता ने इटली में मिलना स्वीकार कर लिया ।

4.7.8.2 रोम की प्राप्ति:

रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का एकीकरण 1866 में पूर्ण हो चुका था । रोम के बिना इटली की स्थिति उसी प्रकार थी जैसे हृदय के बिना शरीर । रोम पोप के अधीन था और रोम में फ़्रांसीसी सेनाएं पोप. की रहा के लिए मौजूद थी । गैरीबाल्डी ने 1867 में रोम को लेने का असफल प्रयास किया था । अत: इटली के राजनीतिज्ञ जानते थे कि फ्रांस के सहयोग के बिना उस पर अधिकार करना कठिन था ।

रोम की प्राप्ति का कार्य तब पूर्ण हुआ, जब प्रशा और फ्रांस के बीच 1870 में युद्ध हुआ । इस युद्ध में नेपोलिय तृतीय को प्रशा के विरूद्ध अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ी । अत: उसने रोम से भी अपनी सेना बुला ली । फ्रांस को प्रशा से उलझा हुआ देखकर विक्टर एमेनुअल ने रोम पर आक्रमण कर दिया । 20 सितम्बर, 1870 को रोम पर इटली का अधिकार हो गया । अदनन्तर रोम में जनमत संग्रह कराया गया जिसमें 40 हजार से अधिक मत विक्टर एमेनुअल के पक्ष में पड़े, जबकि पोप पक्ष में केवल 46 मत पड़े । परिणामस्वरूप रोम इटली में शामिल कर लिया गया, और उसे संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया । 2 जून, 1871 को सम्राट ने इटली की इस राजधानी में प्रवेश किया ।

इस प्रकार एक लम्बे संघर्ष के बाद विभिन्न बाधाओं को पार करते हुए, इटली ने अपना एकीकरण पूरा किया और वह एक राष्ट्र के रूप में अवतीर्ण हुआ । वह अब एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' मात्र नहीं रहा अपितु एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया ।

4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

सारांश:

आज इटली की शक्तिशाली राष्ट्रों में गणना की जाती है किन्तु एकीकरण से पूर्व यूरोप की राजनीति ने उसका विशेष महत्व नहीं था । 19 वीं शताब्दी में इटलीवासियों ने अपनी एकता और स्वाधीनता के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष किया उसकी विवेचना इतिहास के विद्‌यार्थियों के लिए आवश्यक एवं रोचक है । 1848 से पूर्व इटली ने एकीकरण की बाधाओं से तो साक्षात्कार कर लिया था किंतु उनको लांघना सहज नहीं था । 1859- 1870 के मध्य इटली एक हो गया- फ्रांस ने सहायता दी, जनता ने विद्रोह कर दिया तथा प्रशा के युद्धों से अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति उत्पन्न हुई- उससे यही लगता था कि कार्य आसान था किंतु वस्तुस्थिति इसके विपरीत थी । इटली के एकीकरण के पीछे आधे शताब्दी के प्रयासों व असफलताएं तथा त्याग एवं कष्टों की कहानी है और एकीकरण के दौर में भी अनेक प्रच्छन्न बाधाओं का सामना कवूर को करना पड़ा । राजनीतिक शतरंज की चालों में अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ आई-चाहे वह नेपोलियन के विश्वासघात के रूप में हो या गैरीबाल्डी के दुस्साहिक प्रयासों के रूप में जबकि एक मामूली गलत चाल भी मेहनत पर पानी फेर देती; अत: एकीकरण आसान नहीं अपितु त्याग एवं परिश्रम का फल था जो मेजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, कवूर की कूटनीति तथा विक्टर एमेनुअल की समझदारी एवं व्यावहारिक बुद्धि तथा असंख्य देशभक्तों के बलिदार से प्रस्फुटित हुआ था ।

अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. कवूर एवं विक्टर एमेनुअल के नेतृत्व में इटली के एकीकरण के आन्दोलन का वर्णन करो ।
2. 'नेपोलियन तृतीय ने इटली के एकीकरण में निर्णायक भूमिका निभाई'-विवेचना कीजिए ।
3. गैरीबाल्डी केवल विचारों का व्यक्ति नहीं था बल्कि कामों का यह बात इटली के इस महान् देशभक्त के बारे में कहाँ तक ठीक है ।
4. 'क्रीमिया के कीचड़ से नवीन इटली का निर्माण होगा'-कवूर । विवेचना करो ।
5. इटली के एकीकरण के विभिन्न सोपानों का विवेचन कीजिए ।

4.9 संदर्भ अध्ययन सामग्री:

(हिन्दी)

केटलबी, सी0डी0एम : आधुनिक काल का इतिहास

चौहान, देवेन्द्रसिंह : यूरोप का इतिहास (1815-1919)

लिप्सन, ई0 : 19 वीं तथा 20 वीं सदी के यूरोप

ग्राण्ट एण्ड टेम्परले : यूरोप का इतिहास (19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी)

(English)

Fisher, H.A.L.: A History of Europe
Garibalei: Autobiography
King, Bolton: History of Italian unity
Marroit : Makers of Modern Italy
Orisi, P: Cavour
Thomson, David: Europe since Napoleon

इकाई-5
जर्मनी का एकीकरण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 पृष्ठभूमि

5.2 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व

5.3 संयुक्त जर्मनी के निर्माण में मन्द गति के कारण

5.4 एकीकरण के प्रयास में सहायक तत्व

5.4.1 बौद्धिक आन्दोलन

5.4.2 औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग

5.4.3 फ्रांस की 1848 की क्रांति

5.4.4 जर्मनी का औद्योगिक विकास

5.5 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6 प्रशा का शासक विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार

5.7 जर्मनी के एकीकरण का सूत्रधार-बिस्मार्क

5.8 चांसलर बनने के बाद बिस्मार्क के उद्देश्य एवं योजना

5.9 एकीकरण की और

5.9.1 प्रथम चरण- डेन्मार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन समझौता

5.9.2 द्वितीय चरण- आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध एवं प्राग की सन्धि

5.9.3 तृतीय चरण- फेंको-प्रशियन युद्ध एवं फैंकफर्ट की सन्धि

5.1 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

5.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य जर्मनी की प्रमुख ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनयिक प्रक्रियाओं से आपको भली भाँति परिचित कराना है, जिन्होंने जर्मनी के एकीकरण को पूर्णता प्रदान की । इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जर्मनी के एकीकरण की गुत्थियों को समझ सकेंगे । प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप अधोलिखित बिन्दुओं को समझ सकेंगे-

फ्रांस की क्रांति एवं नेपोलियन बोनापार्ट ने किस तरह जर्मनी के एकीकरण की आधारशिला रखी ।

आर्थिक कारकों सहित वे कारक जिन्होंने जर्मनी के एकीकरण में परोक्ष रूप से योगदान देकर 'प्रतिक्रिया के युग' के प्रभाव को कमजोर बनाया तथा एकीकरण के प्रयास को क्षीण नहीं होने दिया ।

वे सैनिक सुधार जिनके बिना जर्मनी के रंगमंच पर बिस्मार्क की जरूरत न पड़ती ।

बिस्मार्क के विभिन्न कूटनीतिज्ञ पूर्ण कार्य, जिनके बिना संयुक्त जर्मनी का सपना अधूरा रहता ।

जर्मनी के एकीकरण के सूत्रधार बिस्मार्क ने किस तरह 'रक्त और लोह' की नीति के अन्तर्गत एकीकरण के प्रयास की श्रृंखला में लगातार तीन युद्धों में विजयश्री प्राप्त की और संयुक्त जर्मनी का निर्माण किया ।

5.1 पृष्ठभूमि-

फ्रांस की राज्यक्रांति ने जिन नई शक्तियों एवं प्रवृत्तियों को जन्म दिया उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में एक ओर राष्ट्रीयता, उदारवाद तथा क्रांति की प्रगतिशील शक्तियाँ काम करती रही; दूसरी ओर, निरंकुशता, स्थितिपालकता आदि एकाधिक नामों से पुकारी जाने वाली प्रतिक्रिया की शक्ति उनका दमन करने का प्रयास करती रही । यह एक प्रकार का संक्रमण काल था । इस युग में द्वन्द चलता रहा किंतु राष्ट्रीयता की भावना ने युग को आगे बढ़ाया । इसी राष्ट्रीयता की भावना ने जर्मनी को एक दिशा दी । निःसन्देह नेपोलियन वह प्रथम व्यक्ति था जिसने अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना का बीजारोपण किया था । यह स्मरणीय है कि फ्रांसीसी क्रांति से पहले जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था जिसमें लगभग 300 राज्य थे । नेपोलियन ने जर्मनी में 39 राज्यों का एक संघ बनाकर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया यह इतिहास की विचित्रता है कि नेपोलियन बोनापार्ट ने वर्तमान जर्मनी का निर्माण किया । ' 'अपनी रचनात्मक राजनीति के कारण तो सीधे तरीके से; और उसके शासन के विरोध के कारण जो विरोध उत्पन्न हुआ उससे उल्टे तरीके से, उसके द्वारा संयुक्त जर्मनी का निर्माण हुआ और जर्मन साम्राज्य की नींव पड़ी । जर्मनी का संयुक्त होना कोई साधारण घटना नहीं थी । इटली के एकीकरण के समान यह भी उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास की प्रमुख घटना थी । एकीकरण के बाद जर्मनी यूरोप की एक मजबूत शक्ति के रूप में उठा । वहाँ थोड़े ही समय में अत्यधिक उद्योगीकरण हुआ जिसके बाद वह भी उपनिवेशों की छीना झपटी में शामिल हो गया । जर्मनी के आधारीकरण के बाद वह ऐसी दौड़ में शामिल हुआ जिसका दुःखद अंत रहा ।

वियेना कांग्रेस (1815 ई0) ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध किया लेकिन तब तक राष्ट्रीयता जड़ पकड़ चुकी थी । जर्मन क्षेत्र में नजदीक होने की तड़प बढ़ती जा रही थी किंतु अभी एकीकरण की बात कोसों दूर थी । इस समाप्ति की भावना के पीछे आर्थिक कारण भी थे । जर्मनी में आर्थिक विकास हो रहा था और व्यापक संगठन के बिना पूरा आर्थिक लाभ उठाना राज्यों के लिए सम्भव नहीं था । इसलिए बुजुर्आ ताकतों ने जनसमर्थन के सहारे निकट आने का कम शुरू कर दिया, दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी युग के प्रतीक आस्ट्रिया के मेटरनिख ने कई यूरोपीय शासकों को साथ लेकर किसी भी परिवर्तन की आकांक्षा का दमन शुरू किया ।

वियेना कांग्रेस ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध करते हुए उसे एक शक्तिहीन संघ राज्य के रूप में आस्ट्रिया के प्रभाव में रख दिया । आस्ट्रिया को इस संघ का अध्यक्ष बनाया गया । इस समझौते के अन्तर्गत किसी भी शासक को जर्मन सम्राट का पद नहीं दिया गया । जर्मनी में ऐसी कोई केन्द्रीय संघीय संस्था न थी जो राज्यों की शक्ति पर नियंत्रण कर

पाती । जर्मनी की संघीय डाइट एक समझौता करने वाली संस्था मात्र साबित हुई । इसमें जर्मन रियासतों के शासकों द्‌वारा मनोनीत प्रतिनिधि ही शामिल हो सकते थे । यह संघीय डाइट आस्ट्रिया के प्रभाव तथा आस्ट्रिया व प्रशा की पारस्परिक ईर्ष्या के कारण कोई निर्णायक कार्यवाही नहीं' कर सकती थी । इस प्रकार वियेना समझोते के अन्तर्गत जर्मनी के प्रशासन के लिए की गयी व्यवस्था अनुपयोगी और व्यर्थ थी ।

जर्मनी के राज्य भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार के थे । मौटे तोर पर जर्मनी के राज्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है यथा-उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी । उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हैनोवर, फ्रेंकफूर्ट आदि राज्य थे जबकि मध्य भाग में राइन लैंड और दक्षिण में वुर्टेम्बर्ग, बवेरिया बादेन, पैलेटिनेट, हेस-डर्मेस्टाट आदि । आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से प्रशा सबसे शक्तिशाली था । इन राज्यों की सामाजिक व राजनीतिक प्रणालियां भी बड़ी पिछड़ी हुई थीं । अनेक राज्यों में बँटे होने के कारण जर्मनी के आर्थिक विकास को बड़ा नुकसान उठाना पड़ा था । राष्ट्रीय चेतना की जागृति के साथ, विशेषकर फ्रांस की क्रांति के बाद, इन राज्यों के लोगों ने जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण, लोकतंत्री सरकार की स्थापना ओर सामाजिक व आर्थिक सुधारों की माँग करना शुरू कर दिया । यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि जर्मन राज्य राजनीतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी एक-दूसरे से थोड़े-बहुत जुड़े हुए थे । इसका पहला कारण यह था कि इन राज्यों में पवित्र रोमन सम्राट के प्रति सैद्धांतिक रूप से आदर की भावना थी । दूसरा प्रमुख कारण डाइट का अस्तित्व था । डाइट में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि एक ही मंच पर एकत्र होते थे ।?

5.2 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व-

इटली के एकीकरण के विपरीत जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ यद्‌यपि कम थीं किंतु प्रारम्भिक काल में वे भी कम जटिल न थीं- (i) जर्मनी के विभिन्न राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ (ii) जर्मनी की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप (iii) अधिकांश जर्मन राज्यों की शिथिल सैनिक शक्ति (iv) जन-सामान्य में जागृति का अभाव (v) विदेशी शक्तियों की जर्मनी के मामलों में रुचि; उदाहरणार्थ- फ्रांस दक्षिण जर्मनी के रोमन कैथोलिकों में रुचि रखता था । इग्लैण्ड की रुचि हेनोवर में थी क्योंकि हेनोवर के इलेक्टर को 1714 में इंग्लैण्ड का शासक बना दिया गया था । इन सभी बाधाओं के अतिरिक्त आस्ट्रिया की नीति यह भी रही कि जर्मनी में राष्ट्रीय एकता स्थापित न हो और हैप्सबर्ग राजवंश की प्रधानता बनी रहे ।

5.3 संयुक्त जर्मनी के निर्माण में मन्द गति के कारण-

1815 से 1850 तक जर्मनी के एकीकरण की प्रगति मन्द रही । इसके कुछ कारण थे- प्रथम: जर्मनी को वह शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर करनी थी जो नेपोलियन के साथ युद्धों के कारण हुई थी । द्‌वितीय जर्मनी में राजनीतिक विषमताएं थीं । प्रतिक्रियावादी, आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग साम्राज्य के अधीन जर्मन साम्राज्य की स्थापना चाहते थे सुधारवादियों में कुछ प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी को संगठित करना चाहते थे तो कुछ सभी राज्यों को समाप्त कर एक

गणराज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहे थे । तृतीय: मेटरनिख के द्वारा जर्मनी को नियंत्रण में रखने के लिए प्रतिक्रियावादी नीति का अवलम्बन किया गया । मेटरनिख ने कार्लसबाद के आदेशों के द्वारा जर्मनी में प्रतिक्रियावादी व्यवस्था स्थापित कर दी । अब शिक्षकों तथा विद्यार्थियों पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिया गया । गुप्त समितियों एवं समाचार पत्रों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये । दुःखद तथ्य यह रहा कि जर्मनी के कुछ राज्य भी इस काल में आस्ट्रिया की नीतियों के समर्थक बने रहे । इस प्रकार आस्ट्रिया का दुर्भाग्यपूर्ण हस्तक्षेप जर्मनी की एकता के लिए बुरा साबित हुआ ।

5.4 एकीकरण के प्रयास में सहायक तत्व-

जर्मनी के एकीकरण की गति चाहे धीमी रही किंतु 1815 से 1850 के मध्य कुछ ऐसी प्रवृत्तियों का विकास हो गया था जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमय बनाया । राष्ट्रीयता और एकीकरण की विचारधारा के प्रसार में निम्नलिखित तत्व प्रमुख रूप से सहायक रहे-

5.4.1 बौद्धिक आन्दोलन-

जर्मन उदारवाद व राष्ट्रवाद के विकास में जर्मन प्रबुद्ध वर्ग की देन कम नहीं थी । अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी के कुछ प्रसिद्ध दार्शनिकों एवं विद्वानों ने जर्मनी के बौद्धिक जीवन को एक नयी दिशा प्रदान की । इस युग के दार्शनिकों में हर्डर ने सर्वप्रथम मानव स्वतन्त्रता के बारे में विचार व्यक्त किये । फिक्टे ने जर्मनी के फ्रांस विरोधी राष्ट्रवाद को तर्क और युक्ति के आधार पर स्थापित किया । हींगल का मत था कि सार्वलौकिक विचारधारा का सर्वोत्तम रुप है- राष्ट्र, इसलिए राष्ट्र का स्थान सर्वोपरि होना चाहिए । हार्डेनबर्ग नोवलिस उस युग का श्रेष्ठ लेखक व कवि था । उसकी रचनाएँ जर्मनी के अतीत के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी के जनमानस की आशा-आकांक्षा और कल्पना की शक्ति जागृत और सजग हो गई । इससे जर्मनी के निवासियों को यह भी अनुभव हुआ कि उनको एक सूत्र में बांध रखने वाला सूत्र सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अर्थात् धर्म, भाषा और प्राचीन इतिहास है । डालमेन, रांके, बोमर, हासर आदि इतिहासकारों ने पुराने इतिहास की छानबीन करके जर्मन इतिहास कासे नये रुप में प्रस्तुत किया । इसके साथ ही हेनरिक हाइन, आर्नडीटीटी आर्नड्ट्ट जैसे कवियों ने जनता में राष्ट्रीयता का जोश भरा । इस प्रकार प्रबुद्ध वर्ग ने जर्मन जनता की राष्ट्रीयता की भावनाओं को उकेरा जिसको मेटरनिख की कठोरता भी न रोक सकी ।

5.4.2 औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग-

प्रशा ने 1819 में पहली बार श्वार्जबर्ग-सोंदर-शोगन के छोटे से राज्य से सीमा-शुल्क सम्बन्धी सन्धि करके जालवरीन या सीमा शुल्क संघ का श्रीगणेश किया । अर्थशास्त्री फेडरिक लिस्ट की विचारधारा इस अर्थनीति की पृष्ठभूमि में कार्यरत थी । वह राष्ट्रवादी होने के कारण आर्थिक राष्ट्रवाद में विशवास रखता था । उसका यह मत था कि जर्मनी की सीमा के अन्दर निःशुल्क वाणिज्य नीति प्रचलित होनी चाहिए जिससे जर्मनी की अर्थनीति में एकता स्थापित हो सके । उसने जर्मनी के रेलमार्ग को विस्तृत करने के महत्व पर ध्यान दिया । लिस्ट को 'जर्मन रेलमार्ग का जनक' कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है । जर्मनी में एकता लाने के लिए जो

पारस्परिक आदान-प्रदान की आवश्यकता थी, वह आवश्यकता विकसित रेलमार्ग के निर्माण से पूरी हुई ।

जालवरीन का प्रारम्भ में कुछ जर्मन राज्यों द्वारा विरोध हुआ किंतु शीघ्र ही उनके मतभेद समाप्त हो गये । 1834 तक जर्मनी के सभी प्रमुख राज्य अपनी आर्थिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर इसके सदस्य बन गये थे । इस चुंगी संघ में यह निश्चय किया गया कि इस संघ के सदस्य अधिकांश वस्तुओं का स्वतन्त्र व्यापार करेंगे । और एक-दूसरे के सामान पर चुंगी नहीं लेंगे । इस समझोते के महत्व को आरम्भ में आस्ट्रिया समझने में असफल रहा । प्रारम्भ में सम्भवत: जालवरीन के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य या उच्चाभिलाषा नहीं रही परन्तु धीरे-धीरे प्रशा जालवरीन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व व उत्तरदायित्व को लेने व उत्तरदायित्व को लेने के लिए अज्ञात रुप से प्रस्तुत हो रहा था । 1850 तक जर्मनी के सम्पूर्ण राज्य इस आर्थिक संघ में शामिल हो गए ।

जालवरीन की सफलता और आस्ट्रिया के उससे दूर रहने का यह परिणाम निकला कि निरंतर एक आर्थिक शक्ति के प्रभाव और दवाब से जर्मन राज्यों के मध्य जो राजनीतिक व्यवधान था और जिसने जर्मनी को इतना खंडित कर रखा था, वह व्यवधान धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था । आर्थिक क्षेत्र में एकता की इस अनुभूति ने जर्मनी के विकेन्द्रीकरण में सहायक राजवंशीय तथा प्रादेशिक प्रभाव को भी कम कर दिया । इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि जालवरीन जर्मन राष्ट्रीय एकीकरण का एक उल्लेखनीय एवं प्रभावशील सोपान था ।

5.4.3 फ्रांस की 1848 की क्रांति-

फरवरी, 1848 की फ्रांसीसी क्रांति एवं वियेना में मैटरनिख के पतन की सूचना पाकर जर्मनी के विभिन्न रियासतों में विद्रोह हुए । प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, बादेन आदि सभी राज्यों में राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के समर्थकों ने निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासकों के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया । प्रारम्भ में विद्रोहियों को सफलता मिली । अधिकांश जर्मन राज्यों में वैध राजसत्ता स्थापित हो गयी तथा उदार मंत्रिमण्डलों की नियुक्तियाँ हुई । वैधानिक शासन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को मान्यता प्राप्त हुई । प्रशा के शासक फेडरिक विलियम चतुर्थ (1840-1858) ने उदार संविधान स्वीकार किया और यह घोषणा की- ' 'आज मैंने जर्मनी के प्राचीन झण्डे को स्वीकार किया है और मैं अपनी प्रजा को जर्मन साम्राज्य के प्राचीन झण्डे की रक्षा के लिए समर्पित करता हूँ । अब से प्रशा और जर्मनी के हित एक होंगे ।' ' इस घोषणा से जर्मनी के राष्ट्रवादियों को बल मिला किंतु यह सब कुछ अल्पकालीन साबित हुआ और फेडरिक विलियम पुन: निरंकुशता की नीति की ओर अग्रसर हो गया ।

मार्च, 1848 में सम्पूर्ण जर्मनी का एक संघ बनाने के उद्देश्य से जर्मनी के राष्ट्रवादियों ने एक राष्ट्रीय संसद आमन्त्रित की जिसका अधिवेशन फ्रेंकफर्ट में हुआ । इस संसद में जर्मनी के सभी राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र हुए और जर्मन संघ का संविधान तैयार करने लगे । यह उल्लेखनीय है कि इन प्रतिनिधियों में अधिकांश मध्यम वर्ग के थे किंतु वे क्रांतिकारी नहीं थे । श्रमिक एवं किसानों को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था । इस संसद के सदस्य-प्रतिनिधि लगभग एक वर्ष तक संविधान को लेकर वाद-विवाद ही करते रहे, जो इस संसद की सबसे बड़ी दुर्बलता

रही । जब संविधान को अंतिम रुप दिया जा रहा था तब तक प्रतिक्रियावादी पुन: प्रभावी हो गए । अस्तु! मार्च, 1849 में संसद ने संघ का संविधान बना लिया और प्रशा के शासक को जर्मनी का सम्राट बनाने का निर्णय लिया । किंतु फेडरिक विलियम चतुर्थ ने नवीन जर्मन साम्राज्य का राजमुकुट अस्वीकार कर दिया । कायरतापूर्ण व्यवहार, अस्थिर नीति, अहंकार तथा रूढ़ियों के प्रति मोह के कारण फेडरिक ने ताज को ठुकरा दिया । इस घटना ने उदारवादियों एवं राष्ट्रवादियों की आशाओं पर तुषारापात कर दिया । इस प्रकार जर्मनी में 1848 का उदारवादी तथा क्रांति समर्थक आन्दोलन असफलता के साथ समाप्त हो गया । परन्तु फिर भी, 1848 की क्रांति सर्वथा निष्फल नहीं रही । क्रांति ने जर्मनी में उदारवाद एवं राष्ट्रीयता की भावना कों सबल बनाया ।

5.4.4 जर्मनी का औद्योगिक विकास-

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के विस्तार के साथ जर्मनी का भी प्रवेश हुआ । जालवरीन की स्थापना और विस्तार के साथ जर्मनी में व्यापार और उद्योगों का मार्ग प्रशस्त हुआ । इस समय में प्रशा के रूर क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में कोयला और लोहा मिल जाने के कारण औद्योगीकरण तीव्र गति से हुआ । सूती कपड़े के उद्योग में मशीनों का उपयोग बढ़ने लगा और कई स्थानों पर सूती कपड़े की मिलें स्थापित की गई । साथ ही रेलों का भी विस्तार किया गया । 1850 तक जर्मनी के प्रमुख नगरों को एक दूसरे से रेल द्वारा जोड़ दिया गया था । जर्मनी का आर्थिक नेतृत्व प्रशा ही कर रहा था और 1860 तक जर्मनी की गणना यूरोप के औद्योगिक राज्यों में की जाने लगी थी । इसके विपरीत आस्ट्रिया प्रशा के बहुत पीछे रह गया था क्योंकि उद्योग-व्यापार और वाणिज्य में आस्ट्रिया अपनी रूढ़िवादी नीति (एकाधिकार गिल्ड प्रथा आदि) के कारण बहुत पिछड़ा रहा । 1866 के आस्ट्रिया प्रशा युद्ध के प्रारम्भिक काल में आस्ट्रिया को आर्थिक घाटा और तीव्र आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार वाणिज्य और उद्योग के कारण निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था ।

उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप समाज में एक नए पूँजीपति वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ । जर्मनी के राजनीतिक जीवन पर यह वर्ग प्रभावशाली हो गया । इस वर्ग की इच्छा थी कि जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त कर एक संयुक्त जर्मनी का निर्माण किया जाए जिसमें उद्योग-धन्धों पर कोई प्रतिबन्ध न रहे । डेविड थामसन ने यूरोप सिंस नेपोलियन में लिखा है कि पूँजीपति वर्ग का सहयोग मिल जाने से एकीकरण के आन्दोलन को ऐसा बल प्राप्त हुआ, जो पहले के आन्दोलनों को प्राप्त नहीं हो सका ।'

5.5 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी अनेक राज्यों में बँटा हुआ था । नेपोलियन की लड़ाईयों के जमाने में इनमें से बहुत से समाप्त हो गए । युद्ध के बाद जर्मनी में 38 राज्य बचे रहे थे । आकार और सैनिक शक्ति के हिसाब से प्रशा सबसे शक्तिशाली था । 1815 ई0 में जर्मनी के राज्यों को आस्ट्रिया के साथ एक जर्मनीय संघ में संगठित कर दिया गया । फिर भी राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर लोगों ने सुधारों की मांग जारी रखी । 1848 ई0 में जर्मनी के प्रत्येक

राज्य में विद्रोह हुए और शासकों को लोकतन्त्रीय संविधान बनाने पर मजबूर किया । प्रारम्भ में राष्ट्रवादियों एवं लोकतांत्रिकों को कुछ सफलता अवश्य मिली किंतु शीघ्र ही शासकों का दमन चक्र शुरू हो गया और लोगों को क्रांति के प्रारम्भ में जो अधिकार मिल चुके थे, वे भी छिन गए । हजारों जर्मन, क्रांतिकारियों को देश छोड़कर भागना पड़ा । जर्मनी के एकीकरण के लिए हुई 1848 ई0 की क्रांति की असफलता से एकीकरण के संघर्ष का पहला दौर समाप्त हो गया । अब जर्मनी का एकीकरण एक लोकतन्त्रीय देश के रुप में क्रांतिकारियों के प्रयत्न से नहीं होना था बल्कि एक सैन्य शक्ति प्रधान साम्राज्य के रुप में शासकों द्वारा होना था । प्रशा एवं उसके चांसलर बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण में अहम् भूमिका अदा की किंतु प्रशा के औद्योगिक विकास, औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग के प्रतीक जालवरीन एवं बौद्धिक आन्दोलन की भूमिका भी उल्लेखनीय रही है ।

5.6 प्रशा का शासक

सम्राट विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार-

फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का 1858 में मस्तिष्क विकृत हो आने से अगले तीन वर्षों तक उसका भाई विलियम उसका संरक्षक बना और 1861 में फ्रेडरिक की मृत्यु के पश्चात् विलियम प्रशा का शासक बना । इस समय उसकी आयु 64 वर्ष थी । यद्यपि विलियम प्रथम का मस्तिष्क उतना विचारवान एवं तीक्ष्ण नहीं था, जितना कि उसके भाई का किन्तु वह दृढ़ निश्चयी था और उसके विचार सुलझे हुए थे । वह परिश्रमी, ईमानदार एवं व्यावहारिक था । वान सिबेल ने अपनी पुस्तक 'द फाउन्डिंग ऑफ जर्मन एम्पायर' में लिखा है कि ' 'विलियम में ऐसी अनोखी प्रतिभा थी जिससे वह समझ लेता था कि क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य ।' ' उसमें योग्य व्यक्तियों को परखने की क्षमता थी । उसको प्रशा पर गर्व था और वह प्रशा के अपमान को सहन नहीं कर सकता था । यद्यपि वह उदारवाद को बुरा समझता था किंतु प्रशा के हित के लिए वह उदारवादियों के साथ सहयोग करने को तत्पर था । उसका दृढ़ विश्वास था कि प्रशा के सुदृढ़ राजतन्त्र के माध्यम से ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव है । निःसन्देह विलियम का शासनकाल प्रशा और जर्मनी दोनों के लिए ऐतिहासिक सिद्ध हुआ ।

विलियम प्रथम महत्वाकांक्षी शासक होने के कारण प्रशा की सेना का पुनर्गठन चाहता था । उसने वानरून को युद्ध मन्त्री और वान मोल्टके को प्रधान सेनापति नियुक्त किया । उन्हीं दोनों व्यक्तियों की सलाह से उसने सेना के पुनर्गठन और सुधार की योजना तैयार की । उसने 39 नए रेजिमेंट और 9 घुड़सवार रेजिमेंट संगठित करने का आदेश दिया । लेकिन इतने व्यापक विस्तार के लिए धन की जरुरत थी । इस हेतु प्रशा के निम्न सदन (प्रतिनिधि सभा) की स्वीकृति आवश्यक थी । इस समय निम्न सदन में उदारवादियों का बहुमत था, जो वान रुन के सैनिक सुधारों को प्रतिक्रियावादी समझते थे । संसद ने युद्ध मन्त्री की योजना में कुछ संशोधन करने का प्रस्ताव किया, किंतु वानरून किसी प्रकार का संशोधन स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ । इसलिए संसद ने बजट पास करने से इन्कार कर दिया । विलियम ने संसद को भंग कर दिया और उसका नया निर्वाचन करवाया । लेकिन दुर्भाग्यवश इस बार भी संसद में

उदारवादियों का बहुमत रहा । अब एक संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया क्योंकि अब सत्ता के अधिकार का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था ।

विलियम संकट में पड़ गया । वह सेना की सुधारों की योजनाएं त्यागना नहीं चाहता था । अब तो एक ही रास्ता रह गया था कि वह पद त्याग कर इस समस्या से मुक्त हो जाये । ऐसे समय वानरून ने सम्राट को सलाह दी कि बिस्मार्क को अपना चांसलर नियुक्त करे जो इस समय फ्रांस में प्रशा का राजदूत था ।

5.7 जर्मनी के एकीकरण का सूत्रधार-बिस्मार्क-

ओटोवान बिस्मार्क प्रशा के एक प्रतिष्ठित सामंत परिवार का था । वह एक अत्यंत योग्य एवं कुशल व्यक्ति था । प्रजातन्त्र में उसकी कतई आस्था नहीं थी । दूसरे शब्दों में वह उदारवादी विचारधारा का कट्टर विरोधी था । उसने उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य में कहा था, ' 'मैं इस युग की उस भावुकता से डरता हूँ जिसमें प्रत्येक दीवाने विद्रोही को सच्चा देशभक्त समझा जाता है ।' ' वह संविधान को घृणा की दृष्टि से देखता था तथा उसे केवल रद्दी का टुकडा समझता था । इसलिए जब फ्रैंकफर्ट की संसद के निमंत्रण पर जर्मन सम्राट बनने का प्रस्ताव प्रशा के राजा ने ठुकरा दिया था तो उसे व्यक्तिगत तौर पर प्रसन्नता हुई थी ।

यद्यपि बिस्मार्क की आस्ट्रिया के प्रमुख व्यक्तियों तथा रुढ़िवादियों से मित्रता थी, तथापि वह चांसलर बनने के बाद प्रशा के स्वतन्त्र स्वरूप और नीति को प्रतिष्ठित करने में सफल रहा । उसने यह समझ लिया था कि तत्कालीन जर्मन संघ का गठन किस सीमा तक असंतोषजनक था । इसलिए बिस्मार्क इस बात पर भी विचार कर रहा था कि किस प्रकार से इस संघ की प्रतिकूल परिस्थिति को प्रशा के समर्थन में परिवर्तित किया जाए जिससे प्रशा जर्मनी के एकीकरण के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर सके । वस्तुत: बिस्मार्क जर्मनी की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए किसी भी नीति का अवलम्बन करने में नहीं हिचकिचाया । उसने सदैव जर्मनी की आवश्यकता व प्रतिष्ठा को अपने व्यक्तिगत सम्मान और प्रतिष्ठा के ऊपर समझा ।

1847 में बिस्मार्क ने राजनीति में प्रवेश किया । उस वर्ष सम्राट ने उसे संयुक्त प्रशियन डाइट का सदस्य निर्वाचित किया । इस सभा में उसने उदारवाद एवं क्रांति का विरोध किया था । इसी समय उसे राष्ट्रीय असेम्बली एवं संविधान सभा का सदस्य बनने का भी मौका मिला । 1851 तक बिस्मार्क राजतन्त्र के कट्टर समर्थक के रुप में पहचाना जाने लगा था । 1851 में सम्राट ने बिस्मार्क को फ्रैंकफर्ट की सभा में प्रशा का प्रतिनिधि नियुक्त किया तथा वहाँ वह अगले आठ वर्ष तक प्रशा का प्रतिनिधित्व करता रहा । इन आठ वर्षो में उसने कूटनीतिक शिक्षा ग्रहण की, उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ तथा उसकी महत्त्वाकाक्षाएं जागृत हुई । यहाँ उसके आस्ट्रिया सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन आया । पहले वह आस्ट्रिया से सहयोग कर क्रांति का दमन करने का समर्थक रहा था । किंतु अब उसे ज्ञात हुआ कि आस्ट्रिया व प्रशा का सहयोग सम्भव नहीं है क्योंकि आस्ट्रिया, प्रशा को बराबरी का स्थान देने को तैयार नहीं था । आस्ट्रिया, जर्मनी की छोटी-छोटी रियासतों को अपने पक्ष में रखकर जर्मन संघ पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहता था । वह समझ गया था कि छोटी-छोटी रियासतों का झुकाव आस्ट्रिया की तरफ अधिक है क्योंकि आस्ट्रिया यथा स्थिति बनाये रखने के पक्ष में था । इस

दौरान प्राप्त अनुभव से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आस्ट्रिया को पराजित किए बिना, प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्भव नहीं है ।

1859 में बिस्मार्क को सेंट पीटर्सबर्ग में राजदूत बनाकर भेज दिया गया । रूस में रहते हुए उसने कुशलता का परिचय दिया और जार अलेक्जेण्डर द्वितीय से व्यक्तिगत मित्रता स्थापित की । यह उसका प्रथम सफल कूटनीतिक कार्य था, जो कालांतर में उसके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ । क्रीमिया युद्ध (1855) के समय प्रशा की निरपेक्षता, सेंट पीटर्सबर्ग में आस्था प्रकट करके रूसी सम्राट को संतुष्ट करना-इन सभी कार्यो के फलस्वरूप बिस्मार्क के लिए रूसी मैत्री सुरक्षित रही, जिसका समय आने पर फ्रांस के विरूद्ध सफलतापूर्वक उपयोग किया गया था ।

मार्च, 1862 में बिस्मार्क को सेंट पीटर्सबर्ग से हटाकर पैरिस में फ्रांस के राजदूत के रुप में भेजा गया । फ्रांस में उसे नेपोलियन तृतीय एवं उसके मन्त्रियों से मिलने एवं उनकी नीतियों को समझने का अवसर मिला । फ्रांस में वह अधिक समय तक नहीं रहा और सितम्बर, 1862 में सम्राट ने उसे बर्लिन बुला लिया तथा प्रशा का चांसलर (प्रधानमन्त्री) नियुक्त किया ।

5.8 चांसलर बनने के बाद बिस्मार्क के उद्देश्य एवं योजना

बिस्मार्क को जिन परिस्थितियों में यह पद सौंपने का निश्चय किया गया था उस समय सम्राट एवं संसद में सैनिक बजट को लेकर ठनी हुई थी । अत: बिस्मार्क ने जब चांसलर पद की शपथ ली थी तब सम्राट को सम्बोधित करते हुए उसने कहा था- ' 'मैं श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊँगा, किंतु संसद के इस संघर्ष में आपका साथ नहीं छोड़ूगा ।' ' बिस्मार्क ने सम्राट के सैनिक सुधारों को लागू करने के लिए पहले प्रतिनिधि सभा से समझौता करने का प्रबल किया किंतु जब समझौता नहीं हो सकता तो उसने प्रतिनिधि सभा की अवहेलना करते हुए केवल उच्च सदन (राज्य सभा) से बजट पास करा लिया और सैनिक सुधारों के लिए आवश्यक धनराशि जुटा ली । 1862 से 1866 तक इसी प्रकार उच्च सदन द्वारा बजट पास किया जाता रहा। वास्तव में बिस्मार्क का यह कार्य अवैधानिक था किंतु राज्य की आवश्यकता को सर्वोपरि मानकर उसने विधान की बिल्कुल परवाह नहीं की । वस्तुत: इस काल में बिस्मार्क का अधिनायकत्व स्थापित हो गया और संसदीय व्यवस्था केवल नाममात्र की बनी रही । 1862 में ही उसने उदारवादियों के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए अपनी नीति को इस प्रकार स्पष्ट किया, ' 'जर्मनी का ध्यान प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं है वरन् उसकी शक्ति पर लगा हुआ है । प्रशा को अनुकूल अवसर आने तक अपनी शक्ति को सुरक्षित रखना है । हम पहले कई बार इस प्रकार के अवसर खो चुके हैं । हमारे समय की महान् समस्याएँ भाषणों और बहुमत के प्रस्तावों द्वारा नहीं बल्कि 'रक्त और लौह' की नीति के द्वारा ही सुलझ सकती है; 1848-49 में हमने यही भूल की थी ।' ' इसका स्पष्ट अर्थ था कि प्रशा के भविष्य का निर्माण सेना करेगी न कि संसद ।

रक्त और लोहे की नीति का मतलब था- युद्ध । इस नीति के पीछे प्रशा की सामरिकता की नीति की परम्परा का प्रभाव विद्यमान रहा क्योंकि फ्रेडरिक महान् के समय से प्रशा की समृद्धि का जो युग प्रारम्भ हुआ उसका आधार प्रशा की सामरिक श्रेष्ठता ही थी । बिस्मार्क का

यह हठ निश्चय था कि जर्मनी का एकीकरण कभी भी सत्ताधारी यूरोपीय राज्यमंडल स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि शक्तिशाली संयुक्त जर्मनी यूरोप के शक्ति संतुलन के लिए एक खतरा साबित होता । इसलिए बिस्मार्क का यह विश्वास था कि शक्तिहीन प्रशा और आगे चलकर शक्तिहीन जर्मनी, एक तो एकीकरण में ही असमर्थ रहेगा और दूसरी ओर यदि एकीकरण हो भी गया तो निर्माण की दृष्टि से जर्मनी, शक्ति के अभाव में, सदा पिछड़ा रहेगा ।

बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य प्रशा को शक्तिशाली बनाकर, जर्मन संघ से आस्ट्रिया को बाहर निकालना एवं जर्मनी में उसके प्रभाव को समाप्त करके प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करना था । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि राज्य के समस्त साधनों पर उसका अधिकार हो । उसका यह अटूट विश्वास था कि राजतंत्र का एकमुखी मार्ग ही जर्मनी की समस्या का एकमात्र समाधान है । उसने राजतन्त्र के केन्द्र बिन्दु पर ही समग्र जर्मनी की राष्ट्रीयता को एकसूत्र में बांधे रखने का प्रयत्न किया । बिस्मार्क अपने को केवल राजा के प्रति उत्तरदायित्व मानता था ।

अपने उद्देश्य प्राप्त करने के लिए बिस्मार्क को बहुत-सी आन्तरिक एवं बाह्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु वह बड़े साहस और लगन के साथ आगे बढ़ता गया । यद्यपि कई बार विलियम प्रथम बिस्मार्क की स्वेच्छाचारी नीति से परेशान हो जाता था किंतु वह सम्राट को समझा कर अपनी नीति की स्वीकृति प्राप्त कर लेता था । उसने प्रशा की सेना का पुनर्गठन करके उसे यूरोप में श्रेष्ठ बना दिया । इसके पश्चात् ही उसने कूटनीतिक चालों से आस्ट्रिया को निर्बल बनाने की चेष्टा की । सौभाग्य से उच्च समय की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बिस्मार्क की नीति को कार्यान्वित करने में सहायक हुई । बिस्मार्क ने अपने सम्पूर्ण कार्यक्रम के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा कि जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रशा की अस्मिता नष्ट नहीं हो जाए । वह प्रशा का बलिदान करने को तैयार नहीं था, जैसा कि पीडमांट ने इटली के एकीकरण के लिए किया । वह प्रशा में ही जर्मनी को समाहित कर लेना चाहता था ।

5.9 एकीकरण की ओर-

अपने उद्देश्य तथा अपनी नीति निर्धारित करके बिस्मार्क अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने लगा । इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति प्रशा के अनुकूल थी । जर्मनी की राष्ट्रीयता के शत्रु, आस्ट्रिया और रुस जिनमें पहले परस्पर मित्रता थी उनमें क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप मनमुटाव हो गया था । बिस्मार्क ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा और रूस को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया । 1862 में जब पोलैण्ड वालों ने विद्रोह किया तो उसने विद्रोह के दमन में रूस की सहायता की, यद्यपि जर्मनी में लोकमत पोल लोगों के पक्ष में था और इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा आस्ट्रिया की सहानुभूति भी उनके साथ थी । इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसने रूस की सहानुभूति प्रशा के लिए प्राप्त कर ली । आस्ट्रिया का रूख पोल लोगों के पक्ष में होने के कारण रूस उससे और भी अधिक अप्रसन्न हो गया । जहाँ तक फ्रांस का सवाल है, फ्रांस में नेपोलियन तृतीय का रूख राष्ट्रीयता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था । अत: उससे मित्रता में आसानी रही । उसने फ्रांस के साथ व्यापारिक संधि करके उसकी भी

मित्रता प्राप्त कर ली । इस प्रकार उसने ऐसी स्थिति तैयार कर ली जिसमें आवश्यकता के समय आस्ट्रिया को कोई सम्भव सहायता प्राप्त न हो सके ।

5.9.1 प्रथम चरण- डेन्मार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन समझौता-

श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन नामक दो रियासतें उनमार्क के शासन के अधीन तो थीं लेकिन डेन्मार्क का अविभाज्य अंग नहीं थी । ये डचियाँ डेनमार्क और जर्मनी के बीच में स्थित थीं । हॉल्सटाइन जर्मन संघ का सदस्य था और यहाँ की जनता भी जर्मन थी श्लेसविग में जर्मन बहुमत तो था लेकिन वहाँ डेन लोग भी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे । डेन्मार्क का शासक धीरे-धीरे इन रियासतों का डेन्मार्क में पूरी तरह विलय चाहता था । डेन्मार्क की जनता इसका समर्थन करती थी, लेकिन जर्मन लोग इसके खिलाP थे । 1852 में लंदन में हुए सम्मेलन में यूरोप के शासकों ने इन रियासतों पर डेनमार्क की सत्ता इस शर्त पर मानी थी कि वह इनको कभी पूरी तरह विलय नहीं करेगा । इसी शर्त को आगस्टनबर्ग के ड्यूक ने स्वीकार कर इन पर अपना दावा छोड़ दिया था । लन्दन की संधि का अगले लगभग 10 वर्षों तक सभी ने पालन किया । परन्तु 1863 में श्लेसविग-हॉल्सटाइन का प्रश्न फिर से उठा । डेनमार्क के शासक फेडरिक सप्तम ने मार्च, 1863 में अपने नए संविधान के तहत हॉलसटाइन पूरी तरह डेनमार्क में मिला लिया और श्लेसविग को स्वायत्तता दे दी । जब नवम्बर, 1863 में फेडरिक की मृत्यु हो गई तो लन्दन की संधि के अनुसार नवम् क्रिश्चियन सिंहासन पर बैठा । उसने भी फ्रेडरिक सप्तम की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया । किंतु ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक के पुत्र फ्रेडरिक ने लन्दन संधि के विरूद्ध इन डचियों पर अपना अधिकार पेश किया । वह विरोध का नेतृत्व करने लगा । जर्मन डाइट ने उसका समर्थन किया और संघीय सेना ने हॉल्सटाइन पर अधिकार कर लिया । यहीं से जर्मनी का इतिहास बिस्मार्क की अतुलनीय कूटनीति तथा अदम्य इच्छा शक्ति का इतिहास बन जाता है ।

अब जर्मन राष्ट्र श्लेसविग-हॉल्सटाइन को एक पृथक राजा के शासनाधीन जर्मन परिसंघ में शामिल करने का अभिलाषी हो गया । इसके विपरीत बिस्मार्क इन प्रदेशों को प्रशा में सम्मिलित करने के अतिरिक्त उन्हें परिसंघ के विनाश तथा जर्मनी से आस्ट्रिया के बहिष्कार का साधन बनाना चाहता था । जर्मन राष्ट्र एक बात चाहता था और बिस्मार्क उससे बिलकुल भिन्न दूसरी बात । यह एक महत्वपूर्ण पहलू है कि बिस्मार्क ने बड़ी दृढ़ता और कुशलता के साथ जनता तथा यूरोपीय राज्यों के विरोध पर विजय प्राप्त करके राष्ट्र को जबरदस्ती उस लक्ष्य पर पहुँचा दिया जिसे उसने स्वयं उसके लिए स्थिर किया था ।

बिस्मार्क यह मानता था कि इन डचियों का प्रशा के नाविक विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि इन दोनों डचियों की भौगोलिक स्थिति सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी । वह किसी भी प्रकार उनको प्रशा में शामिल करना चाहता था । एक बार उसने कहा भी था, ' 'मैंने प्रारम्भ से ही डचियों पर प्रशा के अधिकार करने का विस्तार किया था । " किन्तु अभी वह बल प्रयोग कर इन्हें प्राप्त करने की स्थिति में नहीं था । यदि वह अकेला ही डेन्मार्क पर आक्रमण करता तो आस्ट्रिया अवश्य उसका विरोध करता । इसलिए उसने आस्ट्रिया को मिलाकर उसकी सहायता से अपना काम निकलना चाहा ।

जनवरी, 1864 में आस्ट्रिया और प्रशा दोनों राज्यों के बीच समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि वे जर्मन डाइट अथवा अन्य जर्मन राज्यों के हस्तक्षेप के बिना डचियों की समस्या को हल करेंगे । किन्तु इस संधि में डचियों के भविष्य के विषय में केवल यह निश्चित हुआ कि ये दोनों राज्य पारस्परिक समझौते द्वारा डचियों का भविष्य निर्णय करेंगे । इसी अनिश्चय की स्थिति से आगे चलकर विस्मार्क ने लाभ उठाया ।

डेन्मार्क ने उचियों के सन्दर्भ में जिस नीति का पालन किया उसका आस्ट्रिया और प्रशा को अल्टीमेटम दे दिया जिसमें उसे नये संविधान को रह करने को कहा । डेनमार्क को इंग्लैण्ड से सहायता मिलने की आशा थी, अत: उसने अल्टीमेटम की कोई परवाह नहीं की । फरवरी, 1864 में आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेनाओं ने डेन्मार्क पर आक्रमण कर दिया । डेन्मार्क को कहीं से सहायता प्राप्त नहीं हुई । वह पराजित हो गया । वियेना संधि (अक्टूबर, 1864) के अनुसार डेनमार्क को श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन के साथ ही लावेनबुर्ग की डची को आस्ट्रिया तथा प्रशा के संयुक्त अधिकार में छोड़ देना पड़ा और उनकी वे जो कुछ व्यवस्था करें उसे स्वीकार करने का वचन देना पड़ा ।

गेस्टाइन समझौता- आस्ट्रिया और प्रशा के बीच इस सम्बन्ध में लम्बे समय तक यह गहरा मतभेद चलता रहा कि डचियों पर अधिकार किसका हो और उनकी क्या व्यवस्था की जाये? आस्ट्रिया चाहता था कि ये दोनों डचियों आगस्टनबर्ग के ड्यूक फ्रेडरिकको सौंप दी जायें किंतु बिस्मार्क की इच्छा इन डचियों पर अन्तत: अधिकार करने की थी किन्तु वह कुछ समय के लिए आस्ट्रिया को सन्तुष्ट रखते हुए अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहता था । यह बिस्मार्क की चाल थी । अन्त में गेस्टाइन नामक स्थान पर 14 अगस्त, 1865 को विलियम और फ्रांसिस जोसेफ ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये । इस समझौते के अनुसार यह निश्चित हुआ कि लावेनबुर्ग की डची प्रशा को बेच दी जाए, श्लेसविग प्रशा के पास रहे और हॉल्सटाइन आस्ट्रिया के अधिकार में रहे । कील के बन्दरगाह पर आस्ट्रिया और प्रशा का संयुक्त अधिकार रहा, किंतु प्रशा को वहाँ किलेबन्दी करने का भी अधिकार मिला ।

गेस्टाइन समझौता बिस्मार्क की एक महान् कूटनीतिक विजय थी । बिस्मार्क ने डचियों का प्रश्न जर्मन परिसंघीय सभा से बिल्कुल हटा दिया और आगस्टेनबुर्ग के ड्यूक को भी अपने मार्ग से अलग कर दिया । इस प्रकार इन दोनों ओर से जो उलझनें पैदा हो सकती थीं, उन्हें दूर कर दिया । इसके साथ ही बिस्मार्क ने इस समझौते के द्वारा आस्ट्रिया के साथ संघर्ष की काफी गुंजाइश रख छोड़ी थी । आस्ट्रिया को हॉल्सटाइन अवश्य मिला किंतु वहाँ की जनता जर्मन थी तथा जो सब ओर से प्रशा से घिरा हुआ था और आस्ट्रिया दूरस्थ स्थित था । ऐसी स्थिति में आस्ट्रिया के विरुद्ध असंतोष फैलाने एवं उपद्रव करवाने तथा इस प्रकार आस्ट्रिया को भड़काने की बिस्मार्क को अच्छी सुविधा थी । इस समझोते के पश्चात् बिस्मार्क ने कहा था, ' 'मुझे विश्वास नहीं था कि ऐसा भी कोई आस्ट्रियन राजनीतिक होगा जो इस प्रकार के समझोते पर हस्ताक्षर कर सके ।' ' यद्यपि इस समझौते द्वारा आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध की स्थिति टल गयी थी किंतु बिस्मार्क ने स्वयं कहा था कि इस समझौते के द्वारा हमने ' 'दरार

को कागज से ढक दिया है । " निःसन्देह बिस्मार्क ने इस समझौते के द्वारा आस्ट्रिया के साथ अवश्यम्भावी युद्ध की ओर कदम बढ़ाया ।

5.9.2 द्वितीय चरण- आस्ट्रिया प्रशा युद्ध एवं प्राग की सन्धि-

बिस्मार्क की योजना का दूसरा चरण गैस्टाइन समझौते के बाद शुरू होता है । उसने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी । सैनिक संगठन के साथ उसने कूटनीति के स्तर पर भी अभियान शुरू किया । बिस्मार्क ने कूटनीति द्वारा आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाने की नीति का अवलम्बन किया । इसके साथ ही आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए बिस्मार्क को दो अनुकूल तत्वों की भी आवश्यकता थी । पहले तो यूरोप में जर्मनी के लिए अनुकूल वातावरण और दूसरे, जर्मनी का समर्थन तथा सहयोग ।

बिस्मार्क ने पोलैण्ड में हुए विद्रोह को दबाने में रूस की मदद की थी । इसलिए वह आश्वस्त था कि रूस उसके विरूद्ध नहीं जायेगा । 'इंग्लैण्ड शानदार अलगाववाद' की नीति पर चल रहा था । इसलिए उसे इंग्लैण्ड से यूरोपीय मामलों में हस्तक्षेप की आशा नहीं थी । किंतु उसे नेपोलियन से मिलने का निश्चय किया । बियारिज में दोनों की 1865 में भेंट हुई । यद्यपि इसका कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है किंतु नेपोलियन ने बिस्मार्क को आस्ट्रिया के विरूद्ध होने वाले युद्ध में तटस्थ रहने का सम्भवत: आश्वासन दे दिया था । नेपोलियन को यह आशा अवश्य रही होगी कि तटस्थता का बिस्मार्क कोई न कोई मूल्य अवश्य अदा करेगा । फ्रांस को सम्भवत: बेल्जियम अथवा राइन के कुछ प्रदेश दिलाने की आशा बिस्मार्क ने दिलायी । दोनों में बिस्मार्क निश्चय ही होशियार और कुशल कूटनीतिज्ञ था । इसलिए उसे नेपोलियन को भुलावे में रखने में कठिनाई नहीं हुई । इस समझौते के पश्चात् बिस्मार्क ने इटली के प्रमुख राज्य पीडमान्ट-सार्डीनिया से मित्रता करने का प्रयत्न किया । सार्डीनिया का आस्ट्रिया से क्षुब्ध होने का एक कारण यह भी था कि आस्ट्रिया ने इटली के प्रदेश वैनेशिया पर प्रभुत्व कर रखा था । बिस्मार्क ने इसका लाभ उठाया और आस्ट्रिया के विरूद्ध सहयोग के लिए सार्डीनिया और प्रशा में अप्रैल, 1866 में एक गुप्त समझौता हो गया । इसके अनुसार यह तय किया कि यदि प्रशा आस्ट्रिया के विरूद्ध तीन माह के अन्दर युद्ध की घोषणा कर दे तो इटली भी आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध घोषित कर देगा । इस कार्य के बदले में विजयी होने पर प्रशा ने इटली को वेनेशिया दिलाने का वचन दिया । इस तरह बिस्मार्क की कूटनीति ने आस्ट्रिया को मित्रहीन बना दिया । तत्पश्चात् बिस्मार्क आस्ट्रिया पर आक्रमण का रास्ता ढूंढने लगा । युद्ध का बहाना ढूंढना कोई मुश्किल काम नहीं था । मोल्तके के नेतृत्व में प्रशा की सेना हर स्थिति के लिए तैयार थी । शासक विलियम तथा उसका परिवार यद्यपि युद्ध के लिए तैयार नहीं था किंतु बिस्मार्क ने उसे समझाया कि ' 'आस्ट्रिया प्रशा का कट्टर शत्रु है और उससे युद्ध अवश्य होगा । अभी तो स्थिति प्रशा के अनुकूल है परन्तु यदि अभी युद्ध नहीं हुआ तो युद्ध बाद में होगा और उस समय स्थिति उतनी अनुकूल नहीं रहेगी । " अन्त में राजा ने युद्ध की स्वीकृति दे दी ।

इधर हॉल्सटाइन की जनता आस्ट्रिया के शासन से नारवुश थी और उधर आस्ट्रिया कील में ड्यूक ऑफ आगस्टनबर्ग के पक्ष में चल रहे आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहा था । अत: प्रशा ने जनवरी, 1866 में आस्ट्रिया को एक कड़ा विरोध पत्र भेजा कि वह इस आन्दोलन

को तुरन्त समाप्त कर दे । आस्ट्रिया ने प्रशा के विरोध के उत्तर में यह स्पष्ट कर दिया कि 1864 की प्रशा और आस्ट्रिया ने श्लेसविग और हॉलसटाइन के प्रश्न पर निर्णय करने के लिए जर्मनी की संघीय संसद को आमन्त्रित किया । आस्ट्रिया के संकेत पर संसद ने निर्णय किया कि डेन्मार्क से लिए गए तीनों प्रदेश आगस्टनबर्ग के ड्यूक को दे दिए जाए । बिस्मार्क ने इस निर्णय का विरोध किया । उसने यह दलील दी कि यह गेस्टाइन समझोते के विरूद्ध है । उसने स्पष्ट कह दिया कि आस्ट्रिया द्वारा समझौता भंग किए जाने से प्रशा भी इससे मुक्त है । बिस्मार्क ने आस्ट्रिया का इंतजार किए बिना हॉल्सटाइन में 6 जून को प्रशा की सेना भेज दी । आस्ट्रिया कीं सेना बिना संघर्ष के पीछे हट गयी । आस्ट्रिया ने जर्मन परिसंघ अपनी सेना प्रशा के विरूद्ध भेजे क्योंकि प्रशा ने संघ का सदस्य होते हुए भी संघ के दूसरे सदस्य के विरूद्ध सेना भेजी है । बिस्मार्क ने जर्मन परिसंघ के इस कार्य को अवैध ठहराते हुए संघ को भंग घोषित कर दिया । यद्यपि जर्मनी की कई छोटी रियासतें आस्ट्रिया के साथ थी किंतु प्रशा की तैयारी सुनियोजित थी । प्रशा ने प्रारम्भ में हनोवर, हेस केसल और ड्रेस्डेन पर अधिकार कर लिया । इसके अतिरिक्त प्रशा की एक सेना राजकुमार फ्रेडरिक के नेतृत्व में साइलेशिया की ओर से आस्ट्रिया क्षेत्र में आगे बढ़ रही थी । दो अन्य सेनाएँ बोहीमिया में एक साथ मिल जायें और आस्ट्रिया पर आक्रमण करें । यद्यपि आस्ट्रिया ने प्रशा की सेनाओं को रोकने का प्रयत्न किया किंतु सफलता नहीं मिली । आस्ट्रिया की सेना को विभाजित रखकर इटली ने उसकी पराजय को आसान बना दिया था । प्रशा की सैनिक शक्ति के आगे आस्ट्रिया टिक नहीं पा रहा था । प्रशा के पास ऐसी राइफलें थी जो कई फायर कर सकती थीं जबकि आस्ट्रिया की सेना में एक ही बार चलने वाली राइफलें थीं । युद्ध का निर्णायक संघर्ष सेडोवा या कोनिग्राज में 3 जुलाई, 1866 को सम्पन्न हुआ । इस लड़ाई में आस्ट्रिया की सेना पूर्ण रूप से पराजित हो गई । इस युद्ध में आस्ट्रिया की सेना की हालत इतनी खराब हो गई कि प्रशा का सम्राट विलियम प्रथम तो आस्ट्रिया की राजधानी वियेना पर अधिकार करना चाहता था । किंतु बिस्मार्क ने कहा, ' 'युद्ध का निर्णय हो गया, अब हमें पुन: आस्ट्रिया के साथ उदारतापूर्ण सम्बन्ध बनाने होंगे ।' '

अब प्रश्न उठता है कि प्रशा ने अचानक क्यों युद्ध बन्द किया? इसके कई कारण थे । प्रशा ने आस्ट्रिया जैसी महान् शक्ति को सात सप्ताह के अन्दर यद्यपि परास्त कर दिया था किंतु अभी शत्रु की शक्ति पूर्णत: नष्ट नहीं हुई थी । यदि युद्ध चलता रहता और प्रशा के विरूद्ध यूरोपीय गुट बना जाता तो उसकी विजय का फल उसके हाथ से निकल जाने का भय था । फ्रांस को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता था । नेपोलियन तृतीय दोनों राज्यों के बीच मध्यस्थता करने को तैयार हो गया था । प्रशा की सेनाएँ भी उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती थी, जब तक कि पीछे से उसका तोपखाना नहीं आ जाता, जिसमें दो सप्ताह से कम समय नहीं लगता । बिस्मार्क का उद्देश्य पूर्ण हो गया था । उत्तरी जर्मन राज्यों से आस्ट्रिया को खदेड़ दिया गया था । अब वह आस्ट्रिया के साथ ऐसा व्यवहार करना आवश्यक समझता था जिससे आस्ट्रिया अपनी पराजयजनित घृणा को भूलकर आगे चलकर उसका मित्र बन सके ।

प्राग की सन्धि-

(i) आस्ट्रिया ने पुराने जर्मन परिसंघ को समाप्त करने की स्वीकृति दे दी ।

(ii) हनोवर, श्लेसविग, हॉल्सटाइन, हेस काक्षेल, नास्साउ आदि रम्य प्रशा में सम्मिलित कर लिए गए।

(iii) प्रशा के नेतृत्व में मेन नदी के उत्तर में स्थित राज्यों का एक नया संघ- उत्तरी जर्मन परिसंघ- बन जाने की आस्ट्रिया ने स्वीकृति दे दी । इस नए संघ से आस्ट्रिया स्वंय को अलग रखने के लिए राजी हो गया।

(iv) आस्ट्रिया को युद्ध के हर्जाने के तौर पर 30 लाख पौण्ड प्रशा को देने पड़े ।

आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध के परिणाम-

इस युद्ध से यूरोपीय इतिहास का एक नवीन अध्याय शुरू हुआ । प्रशा की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई । उसकी सीमाएं दूर-दूर तक फैल गई । प्रशा को 27 ,000 वर्ग मील का भू-भाग प्राप्त हुआ। अब उसको कील का बन्दरगाह भी मिल गया । सम्पूर्ण उत्तरी जर्मनी का संगठन करके प्रशा उसका अध्यक्ष बन बैठा । इस युद्ध के पश्चात् प्रशा को यूरोप का शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण राज्य और बिस्मार्क को यूरोप का प्रभावशाली राजनीतिज्ञ समझा जाने लगा । प्रशा के उदारवादी अपना उदारवाद भूल गये और बिस्मार्क के कट्टर समर्थक बन गये ।

इस युद्ध से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा और उसके साम्राज्य के संगठन पर भी प्रभाव पड़ा । इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि आस्ट्रिया का सम्बन्ध इटली से टूट गया और उसका एकीकरण लगभग पूर्ण हो गया । रूस आस्ट्रिया की पराजय से सन्तुष्ट हुआ । इस युद्ध के पश्चात् कूटनीतिज्ञों ने यह कहा कि 'सेडोवा की भूमि पर आस्ट्रिया की नहीं फ्रांस की हार हुई । ' यूरोपीय राजनीति के रंगमंच पर फ्रांस एवं उसके शासक नेपोलियन का प्रभाव कम हो गया । उल्लेखनीय बात यह रही कि फ्रांस के सहयोग के बिना प्रशा ने यह उपलब्धि प्राप्त की ।

एक प्रश्न यह उठता है कि बिस्मार्क ने पराजित राष्ट्र आस्ट्रिया के साथ इतना उदार व्यवहार क्यों किया? उसने इस युद्ध के पश्चात् आशातीत ढंग से आस्ट्रिया को सम्मान क्यों दिया? बिस्मार्क यह भली-भाँति जानता था कि आस्ट्रिया के साथ अधिक कठोर रूख, अख्तियार करने पर यूरोप के अन्य देशों के हस्तक्षेप की सम्भावना थी । यह बिस्मार्क की तर्कपूर्ण नीति के विरूद्ध था कि एक साथ एक से अधिक दुश्मन पैदा किए जाएं । इसके अलावा अभी फ्रांस से भी युद्ध होना शेष था । उस सम्भाव्य युद्ध में उसे आस्ट्रिया की तटस्थता की अपेक्षा थी । इस समय कठोर रहकर वह आस्ट्रिया को हमेशा के लिए नाराज नहीं कर सकता था । बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि बिस्मार्क में स्थितियों का कितना सही आकलन किया था ।

उत्तरी जर्मन संघ

बिस्मार्क के सम्मुख जर्मन राज्यों को संगठित करने का प्रश्न अहम् था । वह सभी जर्मन राज्यों को मिलाकर जर्मन राज्य संघ का निर्माण करना चाहता था । किंतु इस समय बिस्मार्क के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था क्योंकि दक्षिणी जर्मनी के राज्यों की इच्छा के विरूद्ध इन्हें संघ में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था । इन राज्यों पर फ्रांस का प्रभाव था । अत: बिस्मार्क ने शेष 21 राज्यों को मिलाकर प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ का निर्माण किया । इस नये जर्मन राज्य संघ के संविधान का निर्माण किया गया । संघ के लिए दो सदनों की संघीय संसद गठित की गयी । इसमें प्रथम लोकसभा या राइरवस्टेग थी, जो वयस्क

मताधिकार द्वारा निर्वाचित होती थी और दूसरी संघीय परिषद् या बुन्देस्राट थी, जिसमें संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे । प्रशा का शासक वंशानुगत अध्यक्ष माना गया और यह भी निश्चित किया गया कि संघ का प्रथम चांसलर प्रशा का प्रधानमंत्री बिस्मार्क हो । इस प्रकार संघ की कार्यपालिका संघ के अध्यक्ष एवं चांसलर के नियन्त्रण में थी किंतु संघ के अन्तर्गत सभी राज्यों के अपने आन्तरिक शासन के अधिकार को पूर्ववत् बनाए रखा गया ।

उत्तरी जर्मन संघ के निर्माण से उत्तरी जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया किंतु जर्मनी का एकीकरण पूर्ण होने के लिए दक्षिण जर्मनी के राज्यों यथा बवेरिया, वुर्टमबर्ग, बादेन तथा हेस राज्यों का इस नये संघ में सम्मिलित होना आवश्यक था । बिस्मार्क यह जानता था कि फ्रांस इसका विरोध करेगा । फ्रांस का हित इस बात में था कि ये राज्य जर्मन संघ से पृथक रहें । इस प्रकार जर्मनी के पूर्ण एकीकरण के लिए अभी बिस्मार्क को दिमागी श्रम करना शेष था ।

5.9.3 फ्रेंको-प्रशियन युद्ध एवं फ्रैंकफर्ट की सन्धि:

(i) पृष्ठभूमि

बिस्मार्क की यह अवधारणा थी कि प्रशा और फ्रांस का युद्ध इतिहास के तर्क में निहित है । इससे स्पष्ट होता है कि बिस्मार्क शुरू से ही फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की तैयारी का मानस बना चुका था परन्तु यह भी कहा जाता है कि दोनों राष्ट्रों के बीच होने वाले युद्ध के बारे में बिस्मार्क ने कोई सुविचारित योजना के तहत काम नहीं किया । अस्तु बिस्मार्क ने उत्तरी जर्मनी को प्रशा के ढंग के प्रशासन में बांध सैनिक तैयारी शुरू कर दी । अब बिस्मार्क के पास लगभग 10 लाख की एक आक्रमक सेना थी । एक ओर प्रशा का ताकत बढ़ रही थी तो दूसरी ओर, फ्रांस में प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ बन जाने से बड़ा रोष उत्पन्न हो रहा था । फ्रांस के राजनीतिज्ञों को ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रशा की विजय से न केवल फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा है वरन् उसकी सुरक्षा के लिए भी भय उत्पन्न हो गया है । फ्रांस के कई राजनीतिज्ञ सेडोवा का प्रतिशोध लेने की माँग कर रहे थे । नेपोलियन तृतीय अपनी नष्ट होती हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करना चाहता था । कालान्तर में दोनों राष्ट्रों को 'युद्ध' अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान का उपाय नजर आया।

(ii) लक्सेमबर्ग का प्रश्न-

नेपोलियन तृतीय यह आशा लगाए बैठा था कि बिस्मार्क उसे आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में तटस्थ रहने की कोई कीमत चुकायेगा । उसे यह भी आशा थी कि फ्रांस की सीमा का विस्तार राइन नदी तक तो हो जायेगा । किंतु बिस्मार्क ने उसकी उपेक्षा की । इससे नेपोलियन नाराज हो गया ।

नेपोलियन तृतीय ने अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए 1867 में हॉलैण्ड के शासक से लक्सेमबर्ग को बेचने के लिए तैयार भी हो गया । किंतु इसी समय लक्सेमबर्ग को हस्तान्तरण की योजना जर्मनी में प्रगट हो गयी जिससे सर्वत्र फ्रांस का विरोध हुआ । जर्मनी के राष्ट्रवादी कहने लगे, 'जो प्रदेश जर्मनों का है उसे हम जर्मनी के शत्रुओं के हाथ में नहीं जाने देंगे ।' जर्मनी के समाचार पत्रों में भी इसका तीव्र विरोध किया गया । ऐसी स्थिति में, बिस्मार्क ने बाध्य होकर फ्रांस को सूचित किया कि वह लक्सेमबर्ग के हस्तान्तरित की स्वीकृति नहीं दे

सकता । हॉलैण्ड के शासक ने भी अब लक्सेमबर्ग हस्तनितरी करने से इन्कार कर दिया । फ्रांस में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था । नेपोलियन ने कहा कि, ' 'बिस्मार्क ने मेरे साथ छल किया है ।' ' स्थिति को बिगड़ती देख तटस्थ राष्ट्रों के सहयोग से लक्सेमबर्ग की समस्या पर विचार करने के लिए यूरोपीय राज्यों का सम्मेलन बुलाया गया । मई, 1867 के लन्दन सम्मेलन में लक्सेमबर्ग को तटस्थ राज्य मान लिया गया । इस प्रकार नेपोलियन द्वारा लक्सेमबर्ग प्राप्त करने का प्रयत्न विफल हो गया ।

(iii) स्पेन की गद्दी का प्रश्न

फ्रांस और प्रशा के तनावपूर्ण सम्बन्धों के दौरान स्पेन के उत्तराधिकार का प्रश्न उत्पन्न हुआ जिससे दोनों राज्यों के सम्बन्ध अधिक बिगड़ गये और अंत में युद्ध के नगाड़े बज गये ।

1868 में स्पेन की सम्राज्ञी इसाबेला द्वितीय के विरूद्ध जनता ने विद्रोह किया और उसे हटा दिया । स्पेन के सिंहासन के लिए योग्य उत्तराधिकारी की खोज आरम्भ हुई, जो लगभग दो वर्ष तक चलती रही । अन्त में प्रशा के शासक के सम्बन्धी राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेन का सम्राट बनाने का निश्चय किया । प्रारम्भ में तो लियोपोल्ड ने इस आमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया किंतु 19 जून, 1870 को उसने अपनी स्वीकृति दे दी । लियोपोल्ड का नाम प्रस्तावित कराने में बिस्मार्क का हाथ बताया जाता है । लियोपोल्ड के शासक बनने से प्रशा के प्रभाव में वृद्धि होती ।

किंतु जब पैरिस में यह सूचना पहुँची कि लियोपोल्ड न स्पेन का शासक बनने की स्वीकृति दे दी है तो फ्रांस में बड़ी उत्तेजना फैल गई । सर्वत्र आक्रोश उत्पन्न हो गया । फ्रांस में उच्च राजनयिक सूत्रों में यह चर्चा थी कि लियोपोल्ड को स्पेन की गद्दी मिल जाने से प्रशा की शक्ति बढ़ जायेगी और फ्रांस की सुरक्षा को एक भंयकर खतरा उत्पन्न हो जायेगा । फ्रांस ने अपने राजदूत बेनेदिती को विरोध प्रकट करने को कहा । राजदूत ने प्रशा के सम्राट से एम्स नामक स्थान पर भेंट की, जहाँ विलियम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त न कर रहे थे। अन्ततः सम्राट विलियम ने लियोपोल्ड को यह सलाह दी कि वह स्पेन के सिंहासन के लिए अपनी स्वीकृति वापस ले लें, अतः 12 जुलाई को लियोपोल्ड ने अपनी स्वीकृति वापस ले ली । इस घोषणा से इस दुःखद अध्याय का समापन हो जाना चाहिए था किंतु नेपोलियन एवं फ्रांस के कई राजनीतिज्ञ इतने से संतुष्ट नहीं हुए । वास्तविकता यह थी कि फ्रांस में नेपोलियन का विरोध बढ़ रहा था । वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता था । अतः नेपोलियन ने कूटनीतिक पराजय के अपमान को प्रशा पर लादना चाहा । अब नेपोलियन में बर्लिन स्थित फ़्रांसीसी राजदूत बेनेदिती को संदेश भेजा कि वह प्रशा के राजा से इस बात की मांग करे कि वह भविष्य में कभी भी लियोपोल्ड या होहेंजोलर्न राजवंश के किसी भी व्यक्ति को स्पेन के उत्तराधिकार के लिए उम्मीदवार बनने की अनुमति नहीं देगा । फ़्रांसीसी राजदूत ने एम्स में सम्राट से भेंट की और उससे उपरोक्त आधार पर वचन मांगा, किन्तु सम्राट ने कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया । इस बातचीत का विवरण तार द्वारा बिस्मार्क के पास भेजा गया । तार पहुँचने के साथ ही बिस्मार्क के चेहरे पर उदासी छा गयी किंतु शीघ्र ही उसे एक युक्ति सूझी कि यदि तार का संक्षिप्त रूप प्रकाशित कर दिया जाये तो

फ्रांस और जर्मनी दोनों ओर उत्तेजना फैल जायेगी । यह तथ्य उल्लेखनीय है कि तार का एक शब्द भी बदला नहीं गया, उसे केवल संक्षिप्त कर दिया गया । किंतु तार की पूरी इबारत और संक्षिप्त इबारत में जमीन-आसमान का फर्क था । सी.डी.एम केटलबी का यह कथन तर्कसंगत है कि ' 'पूरी इबारत मानों युद्ध की चुनौती के जवाब में बातचीत का निमन्त्रण था किंतु संक्षिप्त इबारत मानों चुनौती के जवाब में तलवार का वार था । "

एम्स के तार के संक्षिप्त रूप के प्रकाशित करते ही वही प्रभाव हुआ जिसकी बिस्मार्क को आशा थी । उस दिन 14 जुलाई थी और राष्ट्रीय पर्व था । फ्रेंच जाति पहले से ही उत्तेजित थी । कोई सरकार राष्ट्रीय माँग की कैसे अवहेलना कर सकती थी । तीन बार मन्त्रिपरिषद् की बैठकें हुई । फ्रेंच विदेश मन्त्री ग्रेमा का युद्ध के पक्ष में दवाब था । अन्त में युद्ध करना निश्चित हुआ । 15 जुलाई, 1870 क्रो युद्ध की घोषणा कर दी गई । ग्रेमा ने फ्रेंच संसद में गर्जन करके देशवासियों से कहा, ''हम प्रशा की सरकार से सम्मानपूर्ण आश्वासन तो प्राप्त नहीं कर सके किंतु युद्ध का मार्ग तो आपके लिए खुला है । "

फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में युद्ध के निर्णय का स्वागत किया गया । फ्रांस ने बड़े जोश के साथ युद्ध आरम्भ किया था, किंतु वह युद्ध के लिए तैयार नहीं था । सच तो यह है कि फ्रांस को यह युद्ध अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सम्मान की पुन: प्रतिष्ठा के लिए लड़ना पड़ा । फ्रांस की सेना के पास पर्याप्त रसद और कपड़े तक नहीं थे । दूसरी ओर प्रशा ने युद्ध की पूरी तैयारी कर रखी थी । उसकी सेना पूर्ण रूप से युद्ध के लिए तैयार थी । युद्ध मंत्री वॉन रुन और प्रधान सेनापति दीन मोल्टके के प्रयासों से प्रशा की सेना बहुत प्रशिक्षित और दक्ष हो गई थी । बिस्मार्क ने 1866 के युद्ध के बाद ही दक्षिणी राज्यों की प्रशा विरोधी और आस्ट्रिया समर्थक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने की सफल चेष्टा की थी । उसने नेपोलियन की लोभी मनोवृत्ति के बारे में उनको यह कहकर अवगत करा दिया था कि नेपोलियन राइन प्रांत पर अपना अधिकार करने को उत्सुक है । बिस्मार्क की इस समीकरण का यह लाभ हुआ कि भविष्य में अब फ्रांस के विरूद्ध प्रशा के लिए इन राज्यों की सहायता प्राप्त करने की आशा उज्जवल हुई । इसके अतिरिक्त एक ओर-उत्तर जर्मनी के देश प्रेम तथा प्रशा के सफल नेतृत्व एवं सामरिक सफलताओं तथा दूसरी ओर आस्ट्रिया व फ्रांस की स्वार्थी और लोभी मनोवृत्ति को देखते हुए, दक्षिण धीरे-धीरे उत्तर के लक्ष्य को ही अपना लक्ष्य समझने लगा । फलत: नेपोलियन तृतीय की यह आशा धूमिल हो गई कि इस युद्ध में इस युद्ध में दक्षिण राज्य फ्रांस की सहायता करेंगे ।

बिस्मार्क ने अपनी कुशल कूटनीति द्वारा इटली को पहले ही वेनेशिया दिलवाकर फ्रांस से पृथक कर दिया था । अब बिस्मार्क ने इटली को आश्वासन दिया कि जब फ्रांस और प्रशा का युद्ध छिड़े तो इटली रोम राज्य पर अधिकार कर ले । यह स्मरणीय है कि 1849 के बाद से फ़्रांसीसी सेनाऐं पोप के राज्य रोम की सुरक्षा कर रही थीं ।

इस प्रकार बिस्मार्क ने कूटनीति का सहारा लेकर युद्ध को जीतने की पूर्व तैयारी कर ली थी । बिस्मार्क ने उपयुक्त परिस्थिति का अपनी बुद्धि, दूरदर्शिता और कौशल से शीघ्र लाभ उठाकर? अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का सफल प्रयास किया ।

जर्मनी की सेनाओं ने तीन ओर से फ्रांस पर आक्रमण किया । अगस्त के प्रारम्भ में बीसेनबर्ग में फ़्रांसीसी पराजित हुए और प्रशा की सेनाएँ अल्सास तक पहुँच गई । 18 अगस्त को ग्रेवलाट के युद्ध में पुन: फ़्रांसीसी सेना की हार हुई । प्रशा की सेना आगे बढ़ती गई । सबसे अधिक महत्वपूर्ण युद्ध सेडान में 1 सितम्बर, 1870 को हुआ । इसमें प्रशा के सेनापति वान मोल्टके ने फ़्रांसीसी सेना को इतनी बुरी तरह परास्त किया कि नेपोलियन तृतीय को 83 ,000 सेना सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा । इस प्रकार फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य का पतन हुआ और 4 सितम्बर, 1870 को फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना हो गई । नए गणतन्त्र ने युद्ध जारी रखने का निश्चय किया किंतु जर्मन सेनाएं आगे बढ़ती रहीं और पैरिस तक पहुँच गई । 18 जनवरी, 1871 को वर्साय के विख्यात राजमहल में बिस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक किया । पैरिस के पतन (28 जनवरी, 1871) के शीघ्र पश्चात् फ्रांस-प्रशा युद्ध समाप्त हो गया ।

फ्रैंकफर्ट की सन्धि

26 फरवरी 1871 को शांति संधि की प्रारम्भिक शर्तों पर हस्ताक्षर हुए और 10 मई को फ्रैंकफर्ट की संधि के रूप में उसको दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया । इस सन्धि के अनुसार-

(i) फ्रांस को मेज व स्ट्रासबर्ग सहित अल्सास व लोरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पड़े ।

(ii) फ्रांस को युद्ध के हर्जाने के रूप में 20 करोड़ पौण्ड की रकम क्षतिपूर्ति के एवज में देने के लिए बाध्य किया गया । इसके भुगतान के लिए तीन वर्ष की अवधि निश्चित की गई । क्षतिपूर्ण होने तक जर्मन सेना का फ्रांस में रहना भी निश्चित हुआ ।

युद्ध के परिणाम

सेडान युद्ध ने जर्मनी के एकीकरण के शेष भाग को पूर्ण आहूति प्रदान की । युद्ध समाप्ति से कुछ पहले बिस्मार्क ने दक्षिण जर्मनी के राज्यों को जर्मन संघ में सम्मिलित करने की स्वीकृति ले ली थी । अप्रैल, 1871 में जर्मनी के नये विधान की घोषणा हुई जिसके अनुसार दक्षिण जर्मनी के समस्त राज्य यथा बवेरिया, वुर्टमबर्ग, बादेन तथा हेस का दक्षिणी भाग जर्मनी संघीय साम्राज्य में शामिल कर लिये गये । अब एकीकृत जर्मनी यूरोप का प्रतिष्ठित और शक्तिशाली राज्य बन गया । बिस्मार्क भी न केवल जर्मनी का वरन् यूरोप का ऐसा प्रभावशाली राजनीतिज्ञ बन गया । जिसने अगले 20 वर्षों तक यूरोप पर अपनी छाप छोड़ी ।

इस युद्ध ने इटली के एकीकरण को भी पूर्ण कर दिया । 1870 में जब फ्रांस-प्रश युद्ध छिड़ा तो नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के विरूद्ध युद्ध लड़ने के लिए रोम से भी अपनी सेनाएँ बुला ली थीं । इसका लाभ उठाकर सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सम्राट विक्टर एमेनुअल ने अपनी सेनाएं भेजकर रोम पर अधिकार कर लिया ।

युद्ध में पराजय के कारण फ्रांस में राजतन्त्र का सदैव के लिए अन्त हो गया । यद्यपि प्रारम्भ में कुछ समय के लिए विभिन्न विचारधारा के लोगों में संघर्ष चलता रहा किंतु अंत में गणतंत्रवादियों की विजय हुई तथा फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई । 1870 में स्थापित गणतन्त्र फ्रांस में थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी वियमान है ।

इस युद्ध में रुस को भी अप्रत्यक्ष लाभ हुआ । रूस ने फ्रांस को युद्ध में फंसा हुआ देखकर बिस्मार्क के समर्थन पर पैरिस की संधि की धाराओं को तोड़कर काले सागर, में अपने जंगी जहाज उतार दिये तथा सेबास्टपोल की पुन: किलेबन्दी कर इस युद्ध में सर्वाधिक हानि फ्रांस की हुई । उसे युद्ध में भारी हर्जाना के अलावा अल्सास-लोरेन के अत्यधिक समृद्ध प्रदेश देने पड़े । इससे फ्रांस और प्रशा में दीर्घकालीन शत्रुता का जन्म हुआ । यही शत्रुता प्रथम विश्वयुद्ध का एक आवश्यक कारण बनी । हेजन के मतानुसार " 1871 के पश्चात् फ्रैंकफर्ट की सन्धि यूरोप का रिसने वाला फोड़ा बन गया ।' ' फ्रांस कभी भी अपने घोर अपमान को भूल अथवा क्षमा नहीं कर सकता था । कालान्तर में वह बड़ा हर्जाना तो भूल भी जाता किन्तु अल्सास एवं लॉरेन की जनता की सर्वसम्मति एवं कड़े विरोध होने पर शक्ति प्रयोग द्वारा इन प्रदेशों पर अधिकार कर लेना अक्षम्य था और कभी भी भूला नहीं जा सकता था पुनश्च, 'इससे फ्रांस का पूर्वी सीमान्त कमजोर हो गया ।

5.10 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की घटनाओं के आलोक में यह स्पष्ट होता है राष्ट्रीयता की जिस पवित्र अग्नि को फ्रांस की क्रांति ने प्रज्वलित किया था, वह जर्मनी एवं इटली के एकीकरण के साथ देदीप्यमान होकर अपनी आभाबिखेर रही थी । जर्मनी ने अपने एकीकरण की बाधाओं को अनेक सहयोगियों के साथ बिस्मार्क रूपी नाविक को लेकर जिस बखूबी से पार किया, वह युगान्तकारी घटना बनकर दुनिया के समक्ष आयी । प्रशा रूपी नाव के कन्धों पर जर्मनी के एकीकरण का जो भार था, उसको उसने पूरी ताकत के साथ उठाया । तत्कालीन राजनीतिज्ञ, समझते थे कि जर्मनी का एकीकरण एक ऐसा सुहावना प्रातकालीन दृश्य है जिसके चारों ओर गहरा कोहरा और धुन्ध है कोहरा था- प्रशा का आस्ट्रिया के प्रति आदर भाव और आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध; तथा धुन्ध था - असंख्य स्वार्थ व - अनेक छोटे-छोटे राजाओं के परस्पर विरोधी हित अर्थात् जब तक आस्ट्रिया के प्रति कड़ा रूख न अपनाया जाता और जब तक सम्पूर्ण जर्मनी के हितों के आगे छोटी रियासतों के व्यक्तिगत हितो को तिलांजलि न दी जाती, तब तक जर्मनी का एकीकरण असम्भव था । विलियम प्रथम के सिंहासन पर बैठने के साथ जब बिस्मार्क चांसलर बना तभी जर्मनी के एकीकरण का प्रातःकालीन सुहावना दृश्य देखने लगा और प्रशा की नीति में दृढ़ता और आत्मविश्वास का पुट प्रविष्ट हुआ ।

जर्मनी के एकीकरण की सिद्धि सचमुच 'रक्त और लौह' के जरिए की गई । बिस्मार्क को अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए तीन युद्ध लड़ने पड़े । शस्त्र प्रयोग और रक्तपात राष्ट्रीय एकीकरण के सन्दर्भ में साधन के रूप में प्रयुक्त हुए । वस्तुत: बिस्मार्क के दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस तथा कूटनीतिक कुशलता के सामने कोई बाधा स्थायी न बन सकी । यूरोपीय शक्तियाँ अपनी बनाई हुई व्यवस्था को भंग होते हुए देखते रहे परन्तु कोई बिस्मार्क को रोक न सका । बिस्मार्क के काल में पुरातन जर्मनी अपनी नई पहचान बना रहा था । इस समय दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का जर्मनी तो पीछे रह गया और खून और लोहे वाला और बहुत बढ़िया फोजों वाला नया जर्मनी यूरोप के महाद्वीप पर हावी होने लगा ।

जर्मनी के एकीकरण में जालवरीन की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है । आर्थिक एकता ने राजनीतिक एकता के लिए मार्ग तैयार कर दिया था । जब आर्थिक हित सबके एक हो गए तो राष्ट्रीय जागृति के विकास को सहायता मिली । आस्ट्रिया इसके महत्व को न पहचान सका । अब प्रशा के आधिपत्य को चुनौती देने वाला कोई नहीं रहा । इस प्रकार शांत किंतु निरंतर आर्थिक दवाब के कारण वे सब राजनीतिक रूकावटें अप्रभावी हो गयीं जिन्होंने जर्मनी के टुकड़े-टुकड़े कर रखे थे । यह तथ्य विचारणीय है कि बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण में प्रशा के हित सर्वोपरि रखे । इसलिए संयुक्त जर्मनी के निर्माण के दौरान उसने इस बात का पूर्ण ध्यान रखा कि कहीं प्रशा का अस्तित्व जर्मन राष्ट्र में विलीन न हो जाए बल्कि नवोदित जर्मनी प्रशा के सांचे में दला हुआ निकला ।

हमें इस पहलू पर भी विचार करना चाहिए कि क्या बिस्मार्क के एकीकरण का कार्य इटली के एकीकरण के सूत्रधार कवूर से कठिन था? यदि हम इटली के कवूर से बिस्मार्क की तुलना करें यह बात साफ हो जाती है कि बिस्मार्क की स्थिति कई मायनों में कठिन थी । बिस्मार्क को जनता का सहयोग बिल्कुल नहीं मिला जबकि कवूर को इटली की जनता का भरपूर सहयोग मिला । बिस्मार्क को जनता और राज्य की इच्छा के विरूद्ध रक्तपात की नीति के द्वारा वही कार्य करना पड़ा जो कि इटली में शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ । आस्ट्रिया ने जर्मनी में अधिक रूचि ली, परन्तु उसने इटली में उतनी रूचि नहीं ली । इटली में आस्ट्रिया के प्रभाव के क्षीण होने पर वह जर्मनी में अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए चिंतित था । बिस्मार्क की सहायता करने के लिए न तो मेजिनी था और न गेरीबाल्डी । बिस्मार्क को अकेला ही संघर्ष करना पड़ा । इसके अतिरिक्त कई बार अपने ही सम्राट का नीतिगत समस्याओं एवं मुद्दों को लेकर उसे समर्थन प्राप्त करने में कठिनाई हुई ।

अंत में, एक बात और, जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क के कार्य और उद्देश्य क्या थे? वस्तुत: इस विषय को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है । एक विचार यह है कि बिस्मार्क ने जिस नीति का पालन किया उसके आधारभूत सिद्धान्तों और मोटी रूपरेखा को वह सत्तारूढ़ होने से पहले ही तैयार कर चुका था । लन्दन में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री डिजरैली के साथ हुए अपने एक वार्तालाप में उसने अपने कार्यक्रम के मुख्य भाग-डेन्मार्क से युद्ध, आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर करना तथा फ्रांस से युद्ध करना- खुले शब्दों में बता दिया था । इस प्रकार उसके कार्य पूर्व निर्धारित योजना के अनुकूल थे । किंतु इतिहासकारों का एक वर्ग यह मानता है कि बिस्मार्क ने जो कुछ किया वह किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम का अंग नहीं था । उसके सभी कार्य पहले से सोची समझी योजना के अन्तर्गत नहीं हुए । इस वर्ग का यह विचार है कि बिस्मार्क ने जो कुछ प्राप्त किया वह विशुद्ध अवसरवादी नीति का परिणाम था । उनका यह सोच है कि एक विशेष प्रकार का राजनीतिक वातावरण बना, कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और बिस्मार्क ने उस वातावरण एवं परिस्थितियों में ऐसा जोड़-तोड़ बैठाया जिससे अधिकतम लाभ उसके राज्य को हुआ । परन्तु उक्त दोनों विचार पूर्ण सत्य नहीं जान पड़ते हैं । परिस्थितियों का आकलन करने पर परिज्ञात होता है कि 1866 तक बिस्मार्क की नीति पूर्व निर्धारित थी, जैसे डेन्मार्क के साथ लड़ाई के बाद श्लेसविग और हाल्सटीन का प्रशासनिक बँटवारा बिस्मार्क ने सोच-विचार के ही किया था ताकि उन दोनों राज्यों की समस्या को लेकर ही आस्ट्रिया के साथ

भविष्य में विरोध तथा युद्ध का बहाना ढूँढा जा सके । परन्तु इस काल के बाद अर्थात् 1870 में जब फ्रांस-प्रशा का युद्ध हुआ तब बिस्मार्क की नीति पूर्ण रूपेण निर्धारित नहीं थी क्योंकि स्पेन के सिंहासन के प्रश्न के समय उभरी राजनीतिक घटनाओं पर बिस्मार्क का नगण्य वश था यह सच है कि अनुकूल परिस्थितियों का बिस्मार्क लाभ उठाने से नहीं चुका । अंत में फ्रैंकफर्ट की सन्धि ने प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण के कार्य को पूर्णता प्रदान कर जर्मन राष्ट्र में आशा, एवं नई उमंग का संचार किया

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "भाषणों एवं बहुमत के द्वारा समय की महान् समस्याओं का निराकरण नहीं किया जा सकता है वरन् रक्त एवं लोह की नीति द्वारा ही उनका समाधान होता है ।' ' कथन की समीक्षा कीजिये ।
2. 'बिस्मार्क आधुनिक जर्मनी का निर्माता था ।' विवेचना करो ।
3. 'फ्रांस के साथ प्रशा का युद्ध होना समय की आवश्यकता थी, जो टाली नहीं जा सकती थी ।' जर्मनी के एकीकरण के सम्बन्ध में अपने तर्क सहित मत देकर कथन की पुष्टि कीजिए ।
4. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए ।
5. टिप्पणियाँ लिखिए:

   (ख) जालवरीन

   (ग) श्लेसविग-हाल्सटाइन समस्या

   (घ) फ्रैंकफर्ट पार्लियामेन्ट

5.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री-

केटलबी, सी.डी.एम : आधुनिक काल का इतिहास

गुप्ता, पार्थसारथी (सं) : यूरोप का इतिहास

चौहान, देवेन्द्रसिंह : यूरोप का इतिहास (1815-1919)

लिप्सन, ई0 : 19 वीं तथा 20 वीं सदी का यूरोप

(अंग्रेजी)

Lawson, W.H.: Evolution of Modern Germany
Fisher, H.A.L.: A History of Europe
Grant & Temperley: Europe in Nineteenth & Twentieth Centuries
Mann, Golo : The History of Germany since 1789
Thomson, David: Europe since Napoleon

MAHI-02/ISBN13/978-81-8496-261-1